उपन्यास-रत्न-माला—४

बारह बादाम

सम्पादक—

पं० रमेशचन्द्र त्रिपाठी

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

१२६, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथम बार]   १९८३   [मूल्य १।।)

प्रकाशक—
बैजनाथ केडिया
प्रोप्राइटर
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी
१२६, हरिसन रोड.
कलकत्ता।

मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
"वणिक् प्रेस"
१, सरकार लेन,
कलकत्ता।

आख्यायिका-सूची

आख्यायिका	लेखक	पृ०-सं०

उपन्यास-तरङ्ग-मालाका पांचवां पुष्प

मौतका नक़ारा

तैयार है ।

इस उपन्यासका घटनाचक्र कुतूहल-वर्द्धक, रचनाशैली मनोमुग्धकरी, भाषा परिमार्जित और चित्र नेत्राकर्षक हैं ।

खोपड़ीके अक्षर

केदारके पिता मुंशी देवीनन्दन पटनेके ज़मींदार लाला हरप्रसादके पुराने ख़ैरख़्वाह नौकर हैं। ज़मींदारीका सारा इन्तज़ाम उन्हींके हाथमें है। लालाजीने अपना कुल कारो-बार उन्हें ही सौंप दिया है। वे नहीं जानते कि ज़मींदारीमें कहाँ क्या हो रहा है। मुंशी देवीनन्दन भी बड़ी ईमानदारीसे अपनी ज़िम्मेवारी निबाहते हैं।

केदारका घर पटनेसे कुछ दूर देहातमें है। घरपर अकेली उसकी माता रहती है; क्योंकि उसे शहरी ज़िन्दगी बिल्कुल पसन्द नहीं। केदार लड़कपनसे ही अपने पिताके साथ लालाजीके घरपर रहता है। वह अपने मां-बापका इकलौता बेटा है—चार आँखोंमें एक ही पुतली है!

लालाजीको सब लोग विभु बाबू कहते हैं। एक लड़कीके सिवा उनके और कोई सन्तान नहीं। पुत्रके लिये बड़े-बड़े यत्न किये, पर तक़दीरके सामने तदबीरकी न चली। केदारको ही अपने लड़केकी तरह मानते और लाड़-प्यार करते हैं। एक बार मुंशीजी चारों धामकी तीर्थयात्रा करने गये, तो एक जड़ी लेते आये। प्रसादके साथ विभु बाबूको जड़ी भी दी और उसके गुणों-का बहुत बखान किया।

विभु बाबूने उदास होकर कहा—"इन लकड़ियों और घास-पत्तियोंपर अब मेरा कुछ विश्वास नहीं रहा। इन्हें कूड़े-करकटमें फेंक दीजिये।"

मुंशीजी बड़े आस्तिक और श्रद्धालु थे। बोले—"नहीं सरकार! ऐसा मत कहिये, बड़े-बड़े यज्ञसे जो काम नहीं बनता, उसे सिद्ध साधुकी एक जड़ी बना देती है। सन्त-महात्मा तो विधाताकी टाँकी भी मिटा देते हैं।"

विभु बाबू—"दुनियामें सबपरसे मेरा विश्वास उठ गया। कलियुगमें कोई शुभ कर्म नहीं फल सकता। सब करके हार गया। अब ईश्वरसे प्रार्थना करना भी छोड़ दिया।"

मुंशीजीकी सारी चेष्टा बेकार हुई। किन्तु विभु बाबूकी स्त्रीने जब यह हाल सुना, तब तो उसके आनन्दकी सीमा न रही। उसने मुंशीजीसे पूछकर जड़ीका उपयोग किया। मनोरथका वृक्ष विश्वासके शुद्ध जलसे सींचने लगी। ईश्वरकी कृपासे फल भी उत्तम मिला।

एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। खुशियाँ मनायी जाने लगीं। मुंशीजीकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी। केदार तो हथेलीका फूल बन गया। मुंशीजीने लड़केको पाँच कौड़ियोंमें ख़रीदा, इसलिये कि जीता रहे; और विभु बाबूकी स्त्रीके लिये वे ईश्वरसे कम भी तो नहीं थे। वह तो उनको इष्टदेवकी तरह मानने लगी। सब लोग कहने लगे—"आख़िर करते तो सब कुछ ईश्वर ही हैं, मगर मुंशीजीने उजड़ा घर बसा दिया।"

२

विभु बाबूकी कन्या वसुन्धरा और केदार एक ही शिक्षकसे पढ़ने लगे। विभु बाबू दोनोंको कभी मोटरपर हवा खिलाते, कभी दरियाकी सैर कराते, कभी तमाशे दिखाते और कभी तरह-तरहके खिलौने ख़रीदकर ख़ुश करते। मुंशीजीको कभी केदार-की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। केदार भी विभु बाबूके साथ ही प्रसन्न रहता। खेलता भी तो केवल वसुन्धराके संग। वसुन्धरा-की माता भी उसे अपनी तीसरी सन्तान समझती।

कुछ सयानी होनेपर वसुन्धरा कन्या-विद्यालयमें पढ़ने लगी और केदार सिटी-स्कूलमें भर्ती हुआ। केदारकी सुन्दरता और प्रतिभा वसुन्धरासे कम न थी। मगर कभी-कभी विभु बाबूके सामने जब दोनोंकी परीक्षा होने लगती, तब वसुन्धरा नम्बर मार ले जाती। फिर भी केदारको विभु बाबू हरदम उत्साहित करते रहते।

केदार स्कूली शिक्षा पा चुकनेपर कालेजमें भर्ती हुआ। जिस साल वह कालेजमें भर्ती हुआ, उसी साल विभु बाबूके लड़के पचकौड़ी बाबू सिखाने-पढ़ानेके लिये उसके हवाले किये गये। पचकौड़ी बाबूका वह संरक्षक बना दिया गया। वे उसीके साथ टहलते-घूमते, खाते-पीते, पढ़ते-लिखते और सोते-बैठते। मुंशीजी अपने सौभाग्य पर फूले अंग न समाते।

केदार जब बी० ए० में पहुँचा, तब उसकी शादीकी सिफ़ा-रिशें आने लगीं। विभु बाबूने कहा --"केदारकी शादी हौसलेसे

करूँगा। इसलिये वसुन्धराकी शादी करके ही उसकी शादीको सिफ़ारिश सुनूँगा।"

तीन-चार वर्षोंसे वसुन्धराकी शादीकी तैयारियाँ होने लगीं; मगर कहीं शादी ठीक न हुई। कहीं वर अच्छा मिलता, तो घर ख़राब, और घर अच्छा मिलता, तो वर ख़राब। अगर कहीं दोनों अच्छे मिलते तो लेन-देनमें नहीं पटती। तिलक-दहेज़के बखेड़ेने वसुन्धराको सयानी होनेपर भी क्वाँरी रहनेके लिये बाध्य कर दिया।

केदार ग्रेजुएट हो गया। मुंशीजी प्रायः अपने घर जाया करते थे। केदारकी माता बरसोंसे पतोहूका मुँह देखनेके लिये तरस रही थी। जब कभी मुंशीजी घर जाते, वह केदारकी शादीके लिये बहुत गिड़गिड़ाती। मुंशीजी कहते—"केदारकी शादी विभु बाबूके हाथमें है। जब वे चाहेंगे, तभी शादी होगी। मैं कुछ नहीं कर सकता। मुझपर तो बस वसुन्धराकी शादीका भार है। उसकी शादी आज हो जाय, तो कल ही विभु बाबूपर दबाव डालकर मैं केदारकी शादी करा लूँगा। मगर इस समय उनके सामने मेरी ज़बान नहीं खुल सकती। उन्होंने ही केदारको पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। अब शादीमें एक-दो साल देर होनेके कारण उनकी इच्छाके विरुद्ध काम करना बड़ी भारी नमकहरामी होगी।"

केदारकी माताने विभु बाबूकी स्त्रीके पास गुप्त सन्देश भेजा। उसमें वह एक बात बड़े मार्केकी थी—"मैं घरमें अकेली

हूँ। बरसोंसे सोच रही हूँ कि पतोहू आ जाती, तो सेवा करती, बुढ़ापेमें सुख देती, घरमें प्रेतकी तरह मैं अकेली न रहने पाती, दिल बहलता, साध पूरी होती और घर भी आबाद होता।"

इसी बातने विभु बाबूकी स्त्रीके हृदयपर गहरा प्रभाव डाला। स्त्रीकी आकांक्षाओंका मूल्य स्त्री ही समझ सकती है। उसने विभु बाबूसे कहा—"लड़कीकी शादी तो अपने क़ाबूकी बात नहीं है; जब प्रारब्ध होगा, तब आप-से-आप संयोग जुट जायगा। मुंशीजीके लड़केकी शादी अब मत रोकिये। लड़की तो हरदम घरमें आँखोंके सामने रहती है, पर लड़का चारों ओर घूमता-फिरता है—सयाना हो ही गया—पढ़-लिखकर होशियार भी हो गया—अगर कहीं बदचलन हो जाय, तो मुंशीजी भले ही कुछ न बोलें, उनकी स्त्री तो बड़ा उलाहना देगी। केदारका विवाह कर डालिये—"

विभु बाबू बीच-ही-में बोल उठे—"तुम्हारे कहनेसे पहले ही मैं मुंशी हलधारीलालकी लड़कीसे उसकी शादी ठीक कर चुका। इसी साल शादी होगी। मुंशी देवीनन्दनने इस सम्बन्ध-को पसन्द किया है। दोनों ही अपने कारिन्दे हैं और दोनों ही बड़े भलेमानस। अगर ऐसा सम्बन्ध हो जाय, तो फिर क्या पूछना है। इसीलिये मैंने ठीक करा दिया है। केदारकी माता-के पास भी ख़बर भेज दी थी। उनकी इच्छा है कि पतोहूको देखकर शादी की जाय। मुंशी हलधारीलाल लड़की दिखानेपर राज़ी हैं। वे तो केदारको भी दिखाना चाहते हैं। केदारके एक

दोस्तसे यह बात कह दी गयी है। अब शादीमें कोई मीन-मेख नहीं है।"

वसुन्धराकी माताने केदारकी माताके पास यह शुभ सन्देश भेज दिया। फागुन चढ़ते ही शादीकी तैयारियाँ होने लगीं। विभु बाबूने उमङ्गसे खूब ख़र्च भी किया।

केदारकी माता भी पटने बुलायी गयी। बड़ी धूमधामसे पटने-ही-में शादी हुई। मुंशी देवीनन्दन और विभु बाबूकी राय थी कि एम० ए० पास कर लेनेके बाद केदारका गौना हो। मगर माताकी लालसाने पिताकी रायको क़ायम न रहने दिया। विभु बाबूकी स्त्रीने भी बड़ा ज़ोर लड़ाया। बीबियोंके आगे बाबुओंको झुक जाना पड़ा।

२

गौना हुआ। बहू आयी। वसुन्धराकी माताके हौसलेके सामने केदारकी माताका हौसला संकोचमें पड़ गया। बेटे-पतोहूको दूर-ही-से देखकर अपनी आँखें ठण्डी कर लेती; क्योंकि वसुन्धरा और उसकी माता प्रायः बहूको घेरे ही रहतीं—वसुन्धरा तो एक क्षण भी उससे अलग न होती।

विभु बाबूके कुटुम्ब-भरकी स्त्रियोंके लिये केदारकी बहू दिलचस्पीका सामान बन गयी। बेचारी एक साधारण देहाती गृहस्थकी लड़की, पान बनाना नहीं जानती, सिंगार-पटार करनेमें उतनी भी निपुण नहीं जितनी वसुन्धरा—बिलकुल भोली-भाली,

शहरी शिगूफ़े छोड़ना नहीं जानती – वसुन्धरा चुटकियाँ लिया करती, वह सिर्फ़ मुस्कुराकर रह जाती। एक अल्हड़ देहाती लड़की एकाएक आकर बड़े-बड़े अमीरोंकी लड़कियोंके जमघटमें पड़ गयी—बेचारी न घबराय तो करे क्या ?

जब कभी उसका जी उचट जाता, सिसक-सिसककर रोने लगती। वह घरमें रोती, और आँगनमें वसुन्धरा तथा अन्यान्य स्त्रियाँ हँसा करतीं—मखौल करतीं। केदारकी माँ इस विनोद पर मन-ही-मन प्रसन्न होती। वसुन्धराकी माता हँसते-हँसते झुँझला उठती और पास जाकर बहूको पुचकारकर समझाती। कभी-कभी तो वह वसुन्धरापर बहूको चिढ़ानेके कारण बहुत बिगड़ती। मगर उसे तो बहूको छेड़नेमें ही मज़ा आता था।

४

इसी प्रकार कुछ दिनोंके बाद केदारकी बहू सबसे हिल-मिल गयी। वह भी सबकी चुटकियोंका कस-कसकर जवाब देने लगी। देहातीपन जाता रहा, शहरी ढँग नस-नसमें पैठ गया। पान बनाने लगी। फ़ैशनका नशा रंग लाने लगा। ज़बान भी चुस्त-दुरुस्त हो गयी। नफ़ासत और नज़ाकतमें कोई कसर न रह गयी। बोदापन मुर्झा गया, चुलबुलाहट खिल उठी।

वसुन्धरासे उसकी इतनी घनिष्ठता हो गयी कि दोनोंने एक-दूसरेका नाम लेकर पुकारना शुरू किया। केदारकी बहूका नाम था रामप्यारी। उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। डील-डौल और

गठन वसुंधरासे कहीं अच्छी थी। स्वस्थ शरीरमें युवावस्थाकी छटा ही कुछ और होती है। अंगूरके गुच्छेमें रसकी,विमल-सलिला गंगाके अतल हृदयपर शरदेन्दु-बिम्बकी और वसन्तऋतुमें नूतन रसालकी जो शोभा होती है, स्वस्थ शरीरमें युवावस्थाकी — युवावस्थामें सौन्दर्य्यकी प्रायः वही शोभा देखी जाती है।

वसुन्धराका सौन्दर्य्य कमल-दलपर पड़े हुए विमल-चंचल जल-बिन्दुके समान था, और रामप्यारीका सौन्दर्य्य सुपुष्ट यौवन-के स्वच्छ दर्पणमें झलकती हुई दीप-शिखाके समान प्रत्यक्ष प्रति-बिम्बित था। वसुन्धराका सौन्दर्य्य केवल सुकुमारताकी गोदमें पला था, रामप्यारीका सौन्दर्य्य सस्यशालिनी प्रकृति-देवीके हरे-भरे अंचल-तले विकसित हुआ था। वसुन्धराका हृदय नगरके चाकचिक्य और कोलाहलमें पला था, रामप्यारीका हृदय देहात-की एकान्त खुली हवाके शीतल झकोरेमें। वसुन्धराकी देह मखमलके गदेलोंपर पली थी,और रामप्यारीकी देह गाँवकी गलि-योंकी स्वर्ण-धूलिमें। एक मोटरपर चढ़कर बायस्कोप देख आयी थी, दूसरी बैल-गाड़ीपर एक बार गंगा.नहाने जाकर राम-लीला देख आयी थी। दोनों दो साँचेकी ढली थीं;पर प्रेमकी आगने दोनों, के हृदयोंको गलाकर एक साँचेमें ढाल दिया। किन्तु रामप्यारी के प्रेममें किसी प्रकारकी वासना नहीं थी—वह अबोध बच्चेकी हँसीकी तरह पवित्र और कोमल था; पर वसुन्धराके प्रेममें एक तीव्र लालसा थी—उसमें एक धनाढ्य घरानेकी लाड़ली लड़की-के नागरिक जीवनका परिणाम प्रतिबिम्बित था।

५

कभी-कभी वसुन्धराकी माँ केदारकी मातासे कहा करती—"केदारकी दुलहिनकी जैसी भरी देह है, मेरे घरमें वैसी किसीकी नहीं है। मेरे पचकौड़ीकी ऐसी निरोग बहू आती, तो मैं गली-गलीके पत्थरपूजती-फिरती। वसुन्धरा भी जिसके घरमें जायगी, उसका घर डाकृरका दवाख़ाना बन जायगा। दुलहिनके साथ रहनेसे वसुन्धरा प्रसन्न रहती है, मन-बहलावका मसाला मिल गया है न; इसलिये आजकल सिर-दर्द और पेचिशकी शिकायत नहीं सुनी जाती। आजसे कुछ ही दिन पहले मेरा घर अस्पताल बना रहता था।"

रामप्यारी पास-ही-के घरमें बैठी हुई थी। वसुन्धराकी माता-का कथन सुनकर खिलखिला पड़ी। झट वसुन्धराने घरमें जाकर त्योरी चढ़ाते हुए कुछ मुस्कुराकर और कुछ झुँझलाकर कहा—"हँसती क्या हो? मैं भी सयानी होनेपर तुम्हारी ही तरह मोटी-ताज़ी और हट्टी-कट्टी हो जाऊँगी।"

रामप्यारी—"क्या अभी सयानी नहीं हुई हो? बीस बरस-तक ब्याह न होगा, तो क्या तुम बच्ची ही बनी रहोगी?"

वसुन्धरा—"और क्या, जबतक ब्याह नहीं होता, तबतक सयानी होनेपर भी मैं बच्ची ही कहलाऊँगी।"

रा०—"कहलानेसे क्या होगा? आजकलके ज़मानेके मुता-बिक़ तुम्हारी तो एक लड़केकी उमर बीत गयी।"

व०—"ख़ैर, तुम्हारी तो न बीतने पायी? पहले तो तुम सौ

बार बुलानेपर एक बार बोलती थीं और दिन-रात हाथ-भरका घूँघट काढ़े बैठी रहती थीं; मगर अब तो तुम ख़ूब उड़ने लगीं। शहरकी हवा लग गयी ?"

रा०—"घबराओ मत। तुम भी एक दिन लाख बार बुलानेपर एक बार बोलोगी और ऐसा लम्बा घूँघट काढ़े बैठी रहोगी कि घूँघट उठानेवाला भी अधीर हो जायगा।"

व०—"वाह! तुमको तो 'मास्टरसाहब'ने पण्डिता बना दिया। अच्छा, आज ही पचकौड़ीसे कहूँगी कि मास्टरसाहबको अपनी गुरुआनीकी पण्डिताई सुना दे।"

रा०—"क्या करेंगे सुनकर ? तुम्हारे मास्टरसाहबकी मैं परवा नहीं करती।"

व०—"अहा! कबसे ? चुप भी रहो। बड़ी तपस्यासे 'मास्टर साहब' मिले हैं, अपना अहोभाग्य समझो। हज़ारों रुपये तिलक-दहेज़ देकर भी कोई उनके ऐसा जमाई नहीं पा सकता, तुम्हारे बापने तो कौड़ीके मोल हीरा ख़रीद लिया—सिर्फ़ पान-पुङ्गीफल और भर-पत्तल भात देकर मुंशीजीको ठग लिया।"

रा०—"कैसे ठग लिया ? क्या तुम्हारे मास्टरसाहब मुझसे अधिक सुन्दर हैं ?"

व०—"रहने भी दो, कहाँ तुम, कहाँ मास्टरसाहब। आकाश-पातालका अन्तर है। उन्हें देखनेपर जी करता है कि देखती ही रह जाऊँ।"

रा०—"जब वे तुम्हें इतने पसन्द थे ही, तब क्यों तुम्हारे

ब्याहके लिये बरसोंसे दौड़-धूप हो रही है ? मेरे मा-बाप तो ग़रीब हैं, इसलिये हीरेका पूरा दाम न दे सके; तुम्हारे मा-बाप तो हीरा देकर हीरेको ख़रीद सकते थे, वल्कि वे चाहते तो, सेंतमेंतमें पा जाते। फिर क्यों घरकी ऐसी अनमोल चीज़ बाहर फेंकी गयी ?"

व०—"तुम कैसी बातें करती हो ? मेरी पसंदका मूल्य ही क्या है ? और फिर भाग्य तो तुम्हारा चराया हुआ था, मुझे कैसे मिलते ? सबसे बड़ी अड़चन तो यह है कि मुंशीजी मेरे यहाँ नौकर हैं; नौकरके लड़केकी शादी मालिककी लड़कीसे कैसे हो सकती है ? फिर वे लड़कपनसे ही मेरे घर रहते भी तो हैं।"

रा०—"यह तो और अच्छा था। देखी-भाली चीज़ थी। प्रेममें छोटाई-बड़ाई कैसी ?"

वसुन्धरा झुँझला उठी। ठिनककर बोली—"मैं कहे देती हूँ, अच्छा न होगा, मेरे साथ दिल्लगी न करो। मेरे मनका भेद लेने चली हो ?"

रामप्यारी हँसती हुई बोली—"अब झुँझलानेसे क्या होगा ? भेद जो लेना था सो तो ले चुकी। छिपानेसे भी कहीं ऐसा भेद छिपता है ? प्रेमका भेद तो छप्परपर चढ़कर चिल्लाता है।"

६

वसुन्धरा उदास होकर घरसे बाहर चली गयी। छतपर एकान्त कमरेमें लेटकर सोचने लगी—"मुझे आज कुत्ता काट

गया कि इससे बहस करने गयी ? जानती कि यह भेद ले रही है, तो बात ही न उठाती। अब अगर कभी बात भी छिड़ेगी, तो पलट दूँगी। जो बात अब कभी हो ही नहीं सकती, उसके लिये हाय-हाय करना बेकार है। ब्याहकी बात अपने बसकी नहीं है। माता-पिता जो चाहेंगे, वही होगा। माता-पिताकी पसन्द और इच्छाके सामने मेरी पसन्द और इच्छाका कोई मूल्य नहीं हो सकना। इस बारेमें मेरी सलाह भी कौन पूछेगा ? मैं हूँ क्या चीज़ ? असल चीज़ तो नसीब है। उसीपर रहना मेरा धर्म है।"

सोचते-सोचते वसुन्धरा बेसुध-सी हो गयी। थोड़ी देरके बाद वह लम्बी साँस खींचकर उठी। देखा, आसमान बिल्कुल साफ़ है, दिशाओंमें सन्नाटा छा रहा है, पेड़ झूम रहे हैं, गंगा हिलोरे मार रही है, लहरें उठ-उठकर गिर जाती हैं। सोचा, खिड़कियाँ बन्द कर दूँ, प्रकृतिकी यह शोभा देखी नहीं जाती।

इतने ज़ोरकी हवा उठी कि धड़ाकेसे आप-ही-आप खिड़कियाँ बन्द हो गयीं। दीवारपर लटके हुए चित्र हिल गये। एक चित्र टूटकर ज़मीनपर गिर पड़ा। शीशा चकनाचूर हो गया। झन्नसे आवाज़ हुई। चमकीले टुकड़े चारों ओर बिखर गये। वसुन्धरा चौंक पड़ी। फ़ौरन चित्र उठाकर देखा। बड़े ग़ौरसे देखा। आँखें गड़ाकर देखते-देखते चेहरा सुर्ख़ हो आया। एक बार ज्वालामयी आँखोंसे चित्रकी ओर देखते हुए दाँत पीसकर उसे फ़र्शपर पटक दिया।

झोपड़ीके अन्दर
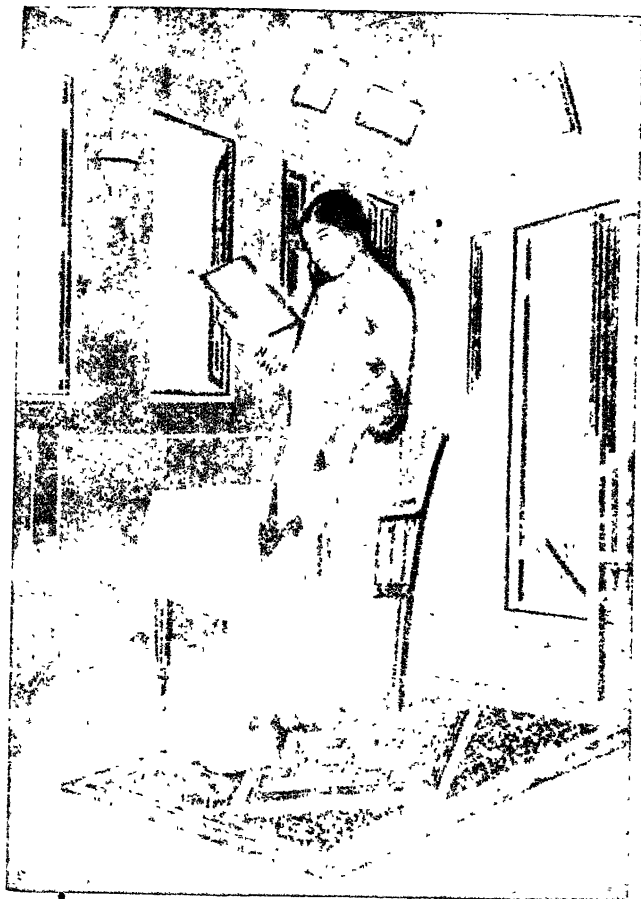
एक बार ज्वालामयी आँखोंसे चित्रकी ओर देखते हुए दाँत पीसकर उसे फ़र्शपर पटक दिया ।—पृष्ठ १२

उस चित्रमें वसुंधरा, केदार और पचकौड़ी बाबू एक साथ बैठे थे। जिस समय केदार मैट्रिक पास कर कालेजमें भर्ती हुआ था—पचकौड़ी बाबूका शिक्षक तथा निरीक्षक नियुक्त हुआ था, उसी समयका फ़ोटो था।

किन्तु एक फ़ोटोकी ओरसे दृष्टि फेरनेके बाद ही दूसरे फ़ोटोपर दृष्टि जा पड़ी। उसमें भी विभु बाबूके साथ केदार और पचकौड़ी! अब जिधर देखती, उधर ही केदार नज़र आता। दावानलकी ज्वालाओंसे घिरी हुई कातर मृगीकी तरह छटपटाने लगी। न रहा गया। कल न पड़ी। नीचे उतर आयी। माताके कमरेमें गयी। वहाँ भी केदारके कई फ़ोटो! बाहरके बरामदोंमें भी वही हाल! अब कहाँ जाय?

फिर छतपर चली गयी। एक खुले बरामदेमें शीतलपाटी बिछी थी। उसीपर पड़ गयी। उसे मालूम हुआ, मानों देहका रक्त सूख गया, सिर घूम रहा है, आँखोंके सामने रंगीन प्रकाश-की बारीक लकीरें खिंचती चली जा रही हैं, तालू सूख रहा है, आसमान चक्कर काट रहा है, छत काँप रही है!

कुछ देरतक उसी तरह पड़ी रही। फिर लगी सोचने—तर्क-वितर्क करने—"जितने फ़ोटो हैं, सबको फाड़कर फेंक दूँ—जला दूँ; मगर उनमें पचकौड़ी भी तो है। रामप्यारी अगर मेरे घरसे चली जाय, तो उसका सौभाग्य देखकर जो कुढ़न पैदा होती है, वह न हो। अच्छा हो यदि पचकौड़ी अब किसी दूसरे मास्टरसे पढ़े। कण्टक ही दूर हो जाय। पचकौड़ीसे आज रात-

को सलाह करूँ और उसके मनमें यह अच्छी तरह जँचा दूँ कि घरू मास्टरकी पढ़ाई अच्छी नहीं होती। मगर, यह मैं क्या सोच रही हूँ ? क्या ऐसा कभी हो सकता है ? मुंशीजीकी नेकी मेरे माता-पिता कभी भूल सकते हैं ? यहाँसे रामप्यारीको जाते देख क्या मेरा यह भाव स्थिर रह सकेगा ? छि: ! मैं किस विडम्बनामें पड़ी हूँ ! इतना पढ़कर मने क्या किया, हृदय मलिन ही रह गया ! तुच्छ वासनाके एक साधारण झकोरेने सारी शिक्षापर पानी फेर दिया ! क्या मेरा मन इतना दुर्बल हो गया ? मैं इतनी गिर गयी ? राम-राम ! आज जिसे देखकर आँखें ठण्डी कर लेती हूँ, उसे ही सदाके लिये आँखोंसे ओट कर क्या मैं शान्ति पा जाऊँगी ? जब मैं दूसरेका सौभाग्य देखकर जलती हूँ, तब भला अपने भाग्यपर क्यों न रोना पड़े ?"

७

बस, तूफ़ान निकल गया, बहिया बह गयी, हृदयका हाहाकार मिट गया। अपने एकान्त कमरेमें चली गयी। शीशेके टुकड़ोंको एक-एककर चुन डाला। फ़र्शपर पड़ा हुआ फ़ोटो उठाकर बड़े आदरसे टेबिलपर सामनेके रुख़में रक्खा। क़लम-दावात लेकर चिट्ठी लिखने बैठ गयी। हाथमें 'लेटर-पेपरका पैड' लेते ही ओठोंपर मधुर मुस्कानकी रेखा खिँच गयी। लिखा—

केदार—

तुम मेरे लड़कपनके साथी हो। मुझे वे दिन याद हैं—तुम्हारे

साथ पढ़ती थी, खाती थी, खेलती थी, टहलने जाती थी, तमाशे-में जाती थी। कोई भेद न था। आज भेद प्रत्यक्ष है। मैं तुम्हें रोज़ देखती हूँ, तुम भी मुझे रोज़ देखते हो; मगर पहलेकी तरह हम-दोनोंमें अब स्वच्छन्द बातचीत नहीं होती। मेरे माता-पिता तुमपर पूर्ण विश्वास करते हैं। पर तुम डरते हो, मैं केवल संकोच करती हूँ। यह हम-दोनोंके दिलकी कमज़ोरी है। इससे साबित होता है कि हम-दोनोंका हृदय अशुद्ध है। मैं अपने हृदयका विश्वास करती हूँ। तुम भी अपने हृदयका विश्वास करो। दिखाऊ बन्धन तोड़कर हम लोग अपनी पहली स्वच्छन्दताको अपनावें और इस बनावटी लोकाचारको धता बतावें।

तुम्हारी—'वसु'

एक दासीद्वारा वसुन्धराका पत्र पाकर केदार चौंका। मगर खोलकर पढ़नेपर अनायास हँस पड़ा। उसी दम जवाब लिखकर भेजा—

वसु—

तुम्हारी बातोंसे तुम्हारी सरलता टपक रही है। अपनेको सँभालो। लोकाचारका अनादर करनेसे कोई लाभ न होगा। अब कोई ऐसा प्रसंग या विषय ही नहीं रह गया, जिसपर तुम मुझसे या मैं तुमसे बातें करूँ। मैं ईश्वरके सिवा किसीसे नहीं डरता;—केवल समाजकी मर्यादा बचाये रखनेके लिये ही अपनी स्वच्छन्दतासे काम नहीं लेता। तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिये। अपनी वर्त्तमान अवस्थामें यदि तुम्हें अपने हृदयका विश्वास है,

नो तुमसे कहीं अधिक मुझे अपने हृदयका विश्वास है। दिखाऊ बन्धनका कारण हृदयकी अशुद्धता मत समझो। यह दिखाऊ बन्धन ही हृदयको शुद्ध रखनेका साधन है। और बन्धनको बनावटी भी न समझो। यह परम्पराकी रीति है। दर-असल यह वन्धन नहीं, बन्धनसे बचनेका उपाय है। अगर तुम्हें मुझसे कुछ बोलनेकी इच्छा होती है, तो सबके सामने खुलासगीके साथ बोला करो, मैं बोलूँगा; मगर तुम्हारी बातोंका जवाब उसी भावसे दूँगा, जिस भावसे पचकौड़ीकी बातोंका दिया करता हूँ।

—के०

८

वसुन्धराके पास पत्र भेजकर केदार सोचने लगा—"बड़ा भारी अनर्थ हुआ चाहता है। वसुका चित्त चञ्चल होने लगा। वह मुझसे बातचीत करनेकी स्वच्छन्दता चाहती है। इससे साफ़ मालूम होता है कि पुरुषसे खुल्लम-खुल्ला बातें करनेमें उसे दिलचस्पी मालूम होती है। अनेक अंशोंमें यह बिलकुल स्वाभाविक है। वह सयानी हो गयी। धनाढ्य घरानेकी लड़की ठहरी। खान-पान, ठाट-बाट, चाल-ढाल, रहन-सहन—सब कुछ अमीराना ही ठहरा। लेकिन ख़ाली अमीरीका ही क़सूर नहीं है, बहुत-कुछ क़सूर समाजका भी है। इतने बड़े घरानेकी लड़की इतनी उम्रतक क्वाँरी क्यों रही? साठ-सत्तर हज़ारकी रियासतके मालिक होकर भी विभु बाबू अगर दस हज़ार तिलक और पाँच हज़ार दहेज़ नहीं दे सकते, तो इस पतित समाजमें इन्हें रहना ही

न चाहिये। इसमें रहनेपर त इतना दण्ड देना ही पड़ेगा। कितने लोग तो अपना सर्वस्व बेचकर इस अत्याचारी समाजका टैक्स चुकाते हैं। इनके तो यही एक लड़की है। अगर बीस-पचीस हज़ार ख़र्च ही कर देंगे, तो इनका क्या बिगड़ जायगा? रियासतपर क़र्ज़ नहीं है, कुछ रुपये भी जमा हैं, ख़र्च कम है, बचत बहुत है, मन्दिरका ख़र्च एक हज़ार मासिक है, दान-खातेमें हर साल लगभग चार हज़ार रुपये ख़र्च होते हैं, मगर सब बेकार है—मालूम नहीं, घरमें युवती क्वाँरी कन्या देखते हुए भी इन्हें कैसे मन्दिर और ख़ैरातमें इतना ख़र्च करना सुहाता है। या तो समाजका बन्धन तोड़ दें, या उसके शासनके सामने सिर झुकावें। दोमें एक होना चाहिये। मैं ही ख़ुद इनसे क्यों न कहूँ कि इस साल आषाढ़के अन्ततक भी वसुका विवाह कर डालें? अगर वर ढूँढ़नेको कहेंगे, तो मैं कालेजका लेकचर छोड़कर एक महीनेके अन्दर शादी ठीक कर दूँगा। अहा! बड़े मौक़ेसे बात याद आयी। चन्द्रज्योति मेरे साथ बी० ए०में पहले साल पढ़ता था। कहींके सरकारी वकीलका लड़का था। शायद ज़मीदार भी था। तभी तो इतनी शान-शौक़तसे ठाटदार बँगलेमें रहता था। सब लड़के उसे शाहज़ादा साहब कहा करते थे। रूप-रङ्गका तो कहना ही क्या, होनहार भी था। ख़ासे विलायती अँग्रेज़की तरह धड़ल्लेसे अँग्रेज़ी बोलता था। मगर आजकल कहाँ पढ़ता है, कुछ पता नहीं। अच्छा, कल कालेजके क्लर्कसे पुराना रजिस्टर माँगकर उसका पता देखूँगा। सम्भव है, किसी लड़केको भी

उसका पता मालूम हो। निरञ्जन उसके साथ बहुत रहता था। उसीसे चलकर क्यों न पूछूँ? अब जैसे भी हो सके, वसुका विवाह इस साल कराकर ही छोड़ूँगा। जबतक उसका विवाह नहीं हो जाता, तवतक अपनी पत्नीके पास ज़नाने मकानमें न जाऊँगा। जिस मकानमें एक ही उम्रकी दो स्त्रियाँ हैं—जब एक सांसारिक सुख-भोगमें लिप्त रहती है, तब दूसरी क्यों न उसका स्वप्न देखे? अपनी पत्नीको भी एक पत्र लिखकर समझा दूँ कि वह मेहँदी लगाना, पान खाना, रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े बदलना, इत्र लगाना और वसुसे मेरी चर्चा करना बिल्कुल छोड़ दे। उसे अपने न मिलनेका कारण भी बता दूँ, ताकि वसुसे उसका मनमुटाव न हो।"

बड़ी देरतक केदार इसी सोचमें डूबा रहा। सोचते-ही-सोचते उठा और साइकिलपर कहीं बाहर निकल गया। पहले कालेजके क्लर्कके पास गया। क्लर्क घरपर न मिला। तब गया निरञ्जनके पास। वह बैठा पढ़ रहा था। उससे चन्द्रज्योतिका पता पूछा। निरञ्जनने बताया—आजकल वह काशीके हिन्दू-विश्वविद्यालयमें पढ़ रहा है; अभी हालमें उसकी चिट्ठी आयी थी।"

केदारने इसी प्रसङ्गमें पूछा—"उसकी शादी अभी हुई कि नहीं?" निरञ्जन ठठाकर हँसा और केदारके कन्धेपर हाथ पटकते हुए कहा—"तुम भी कैसी ताज्जुबकी बातें करने लगे, शादी होती तो वह हम लोगोंको निमंत्रण न देता?"

केदार मुँह बिचकाकर बोला—"एक चिट्ठी तो कभी लिखता ही नहीं, ख़ाक निमंत्रण देता। बड़े आदमीका लड़का है, घमण्डी है।"

निरञ्जन—"हरगिज़ नहीं, तुम उसकी सङ्गतिमें कभी पड़ते, तो देखते कि वह कैसा मिलनसार, ख़ुशदिल, मिठबोलिया और दोस्तपरस्त था। बुलन्दशहरके सरकारी वकीलका लड़का था तो क्या, घमण्ड उसे छू नहीं गया था।"

केदार—"लेकिन कालेजमें तो 'दोस्तपरस्त' की परिभाषा ही कुछ और है। जानते हो? मिलनसार और मिठबोलिया होकर एक ख़ूबसूरत शौक़ीन लड़का कालेजमें कैसा जीवन बिताता है, यह क्या तुम नहीं जानते?"

निरञ्जन—"ख़ूब जानता हूँ, कालेजका वायुमण्डल दुनिया-भरसे निराला है; मगर यह बात नहीं है कि कालेजमें सुशील लड़के होते ही नहीं। चन्द्रज्योतिका चरित्र इतना पवित्र है कि कालेजके बदमाश लड़के कभी उससे बोलनेकी हिम्मत नहीं करते। स्वेच्छापूर्वक वह चाहे जिससे बातें कर ले; मगर उसकी मर्ज़ीके ख़िलाफ़ कोई उसे छेड़ नहीं सकता। मैं यहाँ उसकी वकालत नहीं करता। गर्मीकी छुट्टियोंमें वह यहाँ आनेवाला है। शायद मुज़फ़्फ़रपुरमें उसकी कोई रिश्तेदारी है। वहींसे यहाँ आवेगा। मैं तुम्हारे ही पास उसे ठहरा दूँगा। उस समय देखना कि वह वास्तवमें 'सूरदासकी काली कमली' है या नहीं।"

केदार अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—"हाँ भाई, मेरे ही यहाँ ठहरानी, मैं उसी समय तुम्हारी बातोंको कसौटीपर कसकर देख लूँगा।"

निरञ्जन—"मेरी समझमें नहीं आता कि आज इतने दिनोंके

बाद एकाएक तुम्हें चन्द्रज्योति कैसे याद पड़ गया। रोज़ ही तुम आते थे; मगर कभी उसकी चर्चा नहीं होती थी। आज आते ही तुमने उसीकी बात छेड़ी। आख़िर माजरा क्या है?"

केदारने स्पष्ट शब्दोंमें निरञ्जनसे अपना अभिप्राय प्रकट किया और इस विषयमें पूरी सहायता देनेके लिये उससे आग्रह भी किया। निरञ्जनने चन्द्रज्योतिके नामसे एक विनोद-भरी चिट्ठी लिख दी। केदारने ले जाकर अपने हाथसे उस चिट्ठीको डाकमें छोड़ा। फिर मन-ही-मन प्रसन्न होता विभु बाबूके पास गया। उन्हें चन्द्र-ज्योतिका परिचय बताया। निरञ्जनसे जो बातचीत हुई थी, उसका भी ज़िक्र किया।

विभु बाबू बड़े प्रसन्न हुए। केदारकी पीठ सहलाते हुए बोले—"बेटा, तुम आज ही उस लड़केको एक पत्र लिखो। मैं कल सुबहकी डाकसे ही बुलन्दशहरके लिये पुजारीजीको रवाना करूँगा। क्या तुम्हारे कहनेसे निरञ्जन काशी जा सकता है, तुम भी उसके साथ चले जाना?"

केदार—"आप पुजारीजीको वहाँ कल भेज दीजिये। मैं आज उसे चिट्ठी लिखने जा रहा हूँ। काशी जानेकी ज़रूरत नहीं है। गर्मीकी छुट्टी एक-दो सप्ताहके बाद ही होनेवाली है। वह यहाँ आवेगा। मेरे ही साथ ठहरेगा।"

विभु बाबू तो बुलबुल हो गये। मालूम हुआ, केदारने उनके सिरसे चिन्ताकी भारी गठरी उतार ली। केदारपर उनका विश्वास और प्यार चौगुना बढ़ गया।

ने कमरेमें चला गया। एक पत्र चन्द्रज्योतिको
क अपनी पत्नीको। एक डाकख़ानेमें भेज दिया,
ो बाबूके हाथ घरमें।

पत्र पढ़कर बहुत उदास हो गयी। सोचने
धराने उस दिनकी दिल्लगीका बदला चुका लिया।
के रूपपर लट्टू नहीं है, वे भी उसके रूपके गाहक
ाह नहीं होता, तो मेरा क्या दोष? मैं क्यों अपना
' जब क्वाँरी रहकर वह अपनेको नहीं सँभाल
याही होकर म कैसे वैराग्य ले लूँ? कुछ-न-कुछ
ज़रूर है। मेरे पास न आनेका बहाना अच्छा सोच
ः सब वसुन्धराकी सलाहसे हुआ है। अच्छा,
ः बापकी बेटी हूँ, तो आज ही इस भेदका पता
में नहीं जानती थी कि वसुन्धराका रूप इतना
ृय ऐसा भयङ्कर है। मेरे सामने मीठी-मीठी बातें
पीठ-पीछे मेरी गिला करती है। मगर अब यह
कारगर न होगी। दोमें एक होगा—या तो वह
ी या मैं ज़हर खाकर सो रहूँगी।"

सोचते हुए ही वह वसुन्धराके कमरेमें ऊपर चली
ासन्नतासे बातें करने लगी। हृदयमें ज्वाला थी;
ल झड़ने लगे—"वसु, पचकौड़ी बाबूके मास्टर
ो मेरे पास न आवेंगे। न जाने क्यों मुझसे इतनी
ती ऊब गया।"

वसु०–"तुमसे किसने कहा कि अब न आवेंगे ?"

रा०—"दूसरा कौन कहेगा ? ख़ुद उन्होंने ही पत्र लिखा है।"

वसु०—"कहाँ है वह पत्र ? दिखाओ तो।"

रा०—"फाड़कर फेंक दिया, जीमें बहुत रञ्ज हो आया।"

वसु०—"सुहागिन स्त्री अपने पतिका पत्र नहीं फाड़ सकती, तुम झूठ बोलती हो ; प्यारकी गालियाँ भी रसीली होती हैं।"

रा०—'अच्छा, झूठ ही बोलती हूँ ; न दिखाऊँगी पत्र।"

वसु०—"मत दिखाओ, मैं भी सिफ़ारिश न करूँगी "

रा०—"उनसे बोलती तो हो नहीं, सिफ़ारिश कैसे करोगी ?"

वसु० -"तुम्हारे सुखके लिये मैं सब कर सकती हूँ।"

रा०—"दिलसे कहती हो या मनगढ़न्त ?"

वसु०—"सिर्फ़ दिल-ही-से नहीं, तहे-दिलसे कहती हूँ।"

रा०—'अच्छा, सिफ़ारिश करो, काम सिद्ध होनेपर पत्र दिखाऊँगी, मिठाइयाँ खिलाऊँगी।"

रामप्यारी चली गयी। वसुन्धरा चिन्तामें डूब गयी। सोचने लगी—"भार तो झट उठा लिया; वादा पूरा कैसे होगा ? बोलूँगी कैसे ? मुलाक़ात कब होगी ? ऐसी जगह कहाँ है ? पहले क्या कहूँगी ? कह सकूँगी ?"

६

वसुन्धरा सोचती ही रह गयी। लाख हिम्मत की, मगर केदारसे खुलकर बोलने या एकान्तमें मिलनेका साहस न हुआ।

रामप्यारी रोज़ ही उकसाती थी, रोज़ ही तक़ाज़े करती थी; मगर वसुन्धरा अपने दिलको इतना पोढ़ न बना सकी कि केदारसे कुछ कह सके।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। गर्मीकी छुट्टियाँ पहुँच गयीं। बुलन्दशहरसे पुजारीजी लौट आये। चन्द्रज्योतिके आनेकी तारीख़ रोज़ ही पचासों उँगलियोंपर गिनी जाने लगी। घरमें रोज़ ही चर्चा होने लगी कि वसुन्धराकी शादी केदारके एक मित्रसे होने जा रही है। रामप्यारीके सन्देहपर गाढ़ा रङ्ग चढ़ने लगा—वह दिन-रात असमञ्जसके हिंडोलेपर झूलने लगी। निश्चित तिथिकी शामको एकाएक चन्द्रज्योतिके साथ निरञ्जन आ पहुँचा। विभु बाबूका घर आनन्दकी चहल-पहलसे भर गया।

चन्द्रज्योति अगर सचमुच विभु बाबूका जमाई होता, तो भी उसका इतना आदर-सत्कार न होता। आदर-सत्कारकी अतिशयता देखकर उसके मनमें बड़ा कौतूहल और सङ्कोच होने लगा। किन्तु निरञ्जन और केदारने उसपर यह रहस्य प्रकट न होने दिया। मगर निरञ्जनकी उस विनोद-भरी चिट्ठीकी बातें याद कर कभी-कभी वह बड़े सङ्कोचमें पड़ जाता और बार-बार घर जानेकी उत्सुकता प्रकट करने लगता।

१०

दूसरा सप्ताह बीतते-बीतते घरसे तार आया और चन्द्रज्योति रवाना हो गया। वहाँ जाकर देखा, शादीकी तैयारियाँ हो रही

हैं ! हमजोलियोंने कहना शुरू किया—"ससुराल शादी ठीक करने गये थे ! बारात घर-ही-पर है, दूल्हा ससुराल हो आया !" हमजोलियोंकी बातोंपर मन-ही-मन हँसकर चन्द्रज्योतिने जब पटनेके मित्रोंकी दी हुई 'प्रेमोपहारकी पेटी' खोली, तो फलोंके साथ वसुन्धराका फ़ोटो भी देखा ! आश्चर्य और प्रसन्नताके भाव उसके चेहरेपर झलक उठे—मुस्कुराहटकी एक बारीक रेखा उसके ओठोंपर खिँच गयी !

शादी बड़े हौसलेसे हुई। केदारके तो पैर ही ज़मीनपर न पड़ते थे ! बारातके साथ ही वसुन्धरा ससुरालके लिये घरसे रुख़सत हुई। केदारको मालूम हुआ कि हृदयकी गाँठसे कोई मणि छूट पड़ी ! पञ्जाब-मेलके 'रिज़र्व' डब्बेमें वसुन्धराको बिठाकर केदार 'स्टार्टर-सिगनल' की ओर देखने लगा। गाड़ी खुलते-खुलते वसुन्धराने उसपर एक ऐसी गम्भीर दृष्टि डाली, जिसमें कृतज्ञता और सन्तोषके अगाध भाव भरे हुए थे।

वसुन्धराके वे अतृप्त कटाक्ष आज भी केदारके हृदय-पटपर 'खोपड़ीके अक्षर' की तरह अङ्कित हैं।

सौभाग्य-दिवस

बूढ़े महेश उच्च कुलके ब्राह्मण हैं। घरमें बूढ़ी पत्नी और इकलौती लड़की नारायणीको छोड़ दूसरा कोई नहीं। नारायणी जब छोटी थी,उसी समयसे महेशके हृदयमें यह चिन्ता उत्पन्न हो गयी कि विवाहके बाद नारायणीके चले जानेपर हमारे घरमें ऐसा कोई न रह जायगा,जिसे देखकर हमें सन्तोष हो सके। यह चिन्ता कभी-कभी उन्हें बेचैन कर देती।

महेशके गाँव कंसपुरमें प्रायः सभी जातियोंकी बस्ती है। उनके कोई ज़मीदारी नहीं। जबतक उनकी भुजाओंमें शक्ति रही, खेती-पाती करके अपना काम चलाते रहे। अब उनकी अवस्था और है। शरीर अशक्त हो जानेके कारण अब उनसे खेती-पातीका काम नहीं हो सकता। चार-पाँच बीघे भूमि लेकर दूसरे खेतिहरोंको बोनेके लिये दे देते हैं। जो उपज होती है, उसका आधा भाग उनको मिल जाता है। पहले बहुत दिनों-तक वे पलटनमें भी नौकर थे। वहाँसे नौकरी छोड़नेपर चार रुपयेकी पेंशन हो गयी थी। इन्हीं चार रुपयोंसे उनके जीवन-निर्वाहमें बड़ा सहारा मिलता है।

नारायणीके विवाहसे पहले महेश प्रायः सोचा करते—"जैसे-तैसे नारायणीका विवाह कर देंगे, वह अपने घर चली

जायगी; हम दो प्राणी रह जायँगे, आध सेर आटेमें हमारा काम चल जायगा; एक दिन मर जायँगे, छुट्टी हो जायगी।"

परन्तु उनकी सोची न हुई। नारायणीका विवाह उन्होंने रूपनगरके एक कुलीन ब्राह्मण ज़मीदारके यहाँ यह सोचकर किया था कि हम तो किसी प्रकार अपना निर्वाह कर ही लेंगे,नारायणीका विवाह ऐसे घरमें कर दें कि उसे कभी किसी बातका कष्ट न हो।

ब्याहमें जो कुछ दहेज़ ठहरा था, महेशने उसे यथासाध्य देनेका वचन दिया था। घर आकर किसी प्रकार उसका प्रबन्ध भी किया। ब्याहमें रूपनगरसे बहुत बड़ी बारात आयी। महेशने जो कुछ प्रबन्ध किया था, उससे पूरा न पड़ सका। बरातियोंका खाना-पीना, उनका यथेष्ट आदर-सत्कार और दहेज़के निश्चित रुपये न दे सकनेपर बारातमें बड़ा गोलमाल मचा।

ब्याह हो चुका था, भाँवरें भी पड़ चुकी थीं; पर विवाहके अन्तिम दिनतक महेशने जो कुछ दिया था, वह उतना नहीं था, जितना देनेकी बात ठहरी थी। दस-पाँच रुपयेकी बात न थी; सैकड़ों रुपयेका टोटा रह गया। जितने रुपयेका प्रबन्ध किया था, सब बारातके आदर-सत्कारमें ख़र्च हो गया। फल यह हुआ कि लाख चेष्टा करनेपर भी लड़केके पिता रामप्रताप बारात लेकर चले गये। जाते समय कह गये कि हम अपने लड़केका दूसरा विवाह कर लेंगे, हमारे भरोसे अपनी लड़कीको न बिठा रखना।

२

विवाह हुए पूरे पाँच वर्ष बीत गये। कभी सुन पड़ा कि उस लड़केका दूसरा विवाह हो रहा है। कभी यह सुननेमें आया कि उसका विवाह तो हो गया। इसके सिवा और कोई समाचार न मिला।

विवाह हुए इतने दिन बीत गये; पर दिन-रात सोचनेपर भी महेशको यह न सूझ पड़ा कि अब वे नारायणीके लिये क्या करें। दिन-रात शोक-सन्ताप सहते-सहते उनके लिये दिनकी भूख और रातकी नींद हराम हो गयी। जब बेचारेको कुछ न सूझता, तो नारायणीसे छिपाकर अपनी वृद्धा पत्नीसे बातें किया करते।

एक दिन शामको घरमें बेचारी बुढ़िया उनकी बाट जोह रही थी। बारबार कहती थी—"आज कहाँ इतनी देर हुई, अबतक नहीं आये, न जाने कहाँ चले गये हैं।"

रातके दस बज गये, तो नारायणी खा-पीकर सो गयी। अकस्मात् किसीके आनेकी आहट मिली। धीरे-धीरे महेशने घरमें प्रवेश किया। चुपचाप चारपाईपर जाकर बैठ गये।

पत्नीने पूछा—"आज कहाँ चले गये थे? इतनी देरतक तो कभी बाहर नहीं रहते थे?"

महेशने कुछ उत्तर न दिया। एक लम्बी साँस खींचकर रह गये। किन्तु पत्नीसे पतिकी मानसिक व्यथा छिपी न रह सकी। उसने आश्वासन देते हुए कहा—"रात-दिन चिन्तामें आप डूबे

रहते हैं। इससे कुछ होना-जाना भी है ? विधाताने जो ललाटमें लिख दिया है, वही होगा।"

"होना-जाना क्या है ! केवल चिन्ता-चिन्तामें दिन कट रहे हैं। घुल-घुलकर प्राण देना भाग्यमें बदा है। अब यह बताओ कि नारायणीके लिये क्या करना होगा।"

इतना कहते-कहते महेशके नेत्रोंमें आँसू भर आये। बुढ़ियाने भी आँचलसे अपनी आँखोंके आँसू पोंछे।

महेशने फिर कहा—"हम जिससे बातें करते हैं, वही कहता है कि जो भाग्यमें लिखा था सो हुआ; यह कोई नहीं कहता कि मेरे मरनेपर नारायणीका क्या होगा।"

बूढ़ी बेचारी चुपचाप सुनती रही। उसकी ज़बानसे एक बात भी न निकल सकी। बेचारे महेश चादरसे अपना मुख छिपाकर रो उठे। रोते-ही-रोते और सिसकते-सिसकते बोले—"भगवन्, तुमने हमें कोई सन्तान नहीं दी थी, नारायणीको भी न देते। हम तो अब गिने दिनोंके मेहमान हैं। हमारे न रहनेपर हमारी दुलारी नारायणी किसकी होगी ?"

बुढ़ियाने गरम आह भरकर कहा—"गाँवके लोग तो कह रहे हैं कि नारायणीका विवाह दूसरे लड़केके साथ हो सकता है।"

महेश—"दूसरे लड़केके साथ कैसे हो सकता है ? हम ऊँचे कुलके ब्राह्मण ठहरे; ऐसा तो नीच जातियोंमें होता है।"

बहुत रात बीतेतक पति-पत्नीमें इसी तरहकी बातें होती रहीं। किसीने भोजन नहीं किया। दोनों योंही सो रहे!

३

नारायणी अब निरी बालिका नहीं रही। अब उसकी अवस्था सत्रह वर्षसे अधिक हो गयी। वृद्ध माता-पिताकी चिन्ता और मानसिक पीड़ाका वह पग-पगपर अनुभव करती है। अकेली बैठकर अपने दुर्भाग्यपर आठ-आठ आँसू बहाती है। उसके सम्बन्ध-में गाँववाले जो बातें करते हैं, उन्हें भी सुनती है—समझती है। घरमें अड़ोस-पड़ोसकी स्त्रियाँ आती हैं—उनसे वृद्धा माता रो-रोकर जो बातें करती है, नारायणी उसे भी समझती है—उस समय माताके पास ही बैठकर ज़हरके घूँट पीती है।

महेशकी अवस्था दिन-दिन शोचनीय होने लगी। एक तो बुढ़ापा, दूसरे नारायणीकी दिन-रात चिन्ता! बुढ़िया भी बहुत असमर्थ हो गयी।

एक दिन अपनी क्षीण दशा देखकर महेशने अपनी पत्नीसे बातें करते हुए कहा—"अब हमारे जीनेका कोई ठिकाना नहीं। शरीर दिन-पर-दिन निर्बल होता जा रहा है। चलना-फिरना भी अब दूभर जान पड़ता है। रोते-रोते आँखोंकी रोशनी जाती रही। चिन्ताकी चितापर जीते-ही-जी जल रहे हैं।"

बुढ़ियाने डबडबायी आँखोंसे कहा—"परमात्मा जिसे दुखी करते हैं, उसे पहले सर्वथा असहाय बना देते हैं। आज यदि नारायणीके एक भाई होता, तो उसके लिये आज हमें इतना रोना न पड़ता।"

महेशने बिलखकर कहा—"समझमें नहीं आता कि हमारे

मर जानेपर नारायणी किसका मुँह जोहेगी, किसके टुकड़ोंसे उसका पेट पलेगा !"

बुढ़िया निराशापूर्ण स्वरमें बोली—"जो उसके भाग्यमें लिखा होगा, वही होगा। आदमीका कोई बस नहीं।"

नारायणीके भावी जीवनकी ओर देखकर महेशका हृदय अत्यन्त कातर हो उठा। ठीक इसी समय नारायणी कहीं बाहरसे आयी। उसे देखकर महेश चुप हो रहे। माँ-बापको एकदम स्तब्ध देखकर उनकी चिन्ता और पीड़ा नारायणीसे छिप न सकी। वह उनके शोककी बात ताड़ गयी। चुपचाप जाकर माँके पास बैठ गयी।

उसके प्रशस्त ललाटपर एक अपूर्व श्री दृष्टिगोचर होती थी। अङ्ग-अङ्गमें नवयौवनकी छटा छिटक रही थी। नवयौवन और सौन्दर्य्यके सुहावने सङ्गमका अपूर्व दृश्य था।

नारायणीको देखकर महेशका हृदय अत्यन्त विह्वल हो उठा। नेत्रोंमें आँसू उमड़ आनेके कारण उन्होंने अपनी चादरके एक कोनेसे अपना मुख छिपा लिया। नारायणी यह न देख सकी। वह सोच रही थी—"मेरे कारण मेरे वृद्ध माँ-बापको इतना क्लेश हो रहा है, इतनी चिन्ता सता रही है; मैं क्यों न इन्हें समझाकर कह दूँ कि मेरी चिन्ता एकदम छोड़ दें।"

यह सोचते-ही-सोचते अनायास उसके मुँहसे निकल पड़ा—"पिताजी, आप व्यर्थ क्यों रोया करते हैं? मैं जीवन-भर आपकी सेवा करूँगी, इसीमें प्रसन्न रहूँगी; माता-पिताकी सेवासे बढ़कर संसारमें और है ही क्या?"

नारायणीकी बात सुनकर महेशकी रुलाई फूट पड़ी, आँसुओंका बाँध टूट गया! किसी तरह अपनेको सँभालकर, उमड़ते हुए आँसुओंका वेग रोककर,बोले—"अभी तेरा लड़कपन नहीं गया। हम लोग क्या तेरे जीवन-भर तेरा साथ दे सकेंगे?"

४

नारायणी एक दिन घरमें बैठी रामायणके पन्ने उलट रही थी। इतनेमें उसकी हमजोली दो-तीन नवयुवतियोंने उसके पास आकर कहा—"नारायणी, आज एक सभा हो रही है; देखने चलोगी न?"

नारायणी—"क्या होगा वहाँ? कुछ गाना-बजाना?"

एक बोली—"गाना-बजाना हो या न हो; पर उसमें बातें बड़ी अच्छी सुननेको मिलेंगी।"

दूसरी—"उधर फागुनमें एक बार और भी सभा हुई थी, तुमने भी तो देखी थी?"

नारायणी—"तो क्या वही सभा फिर होगी?"

"तुमने क्या समझा? कोई नाच-तमाशा?"

"तब तो मैं अवश्य चलूँगी। कब होगी?"

"शामके सिवा और कब होगी। सभा क्या छिपी रहेगी?"

"मगर अकेली मैं न जाऊँगी।"

"सभाके समय हम आकर तुम्हें अपने साथ ले चलेंगी। तैयार रहना।"

"तो ज़रूर आना। मैं तुम्हीं लोगोंके भरोसे रहूँगी।"

पाँच बजे शामको सभा आरम्भ हुई। गाँवके सब लोग अपने-अपने काम-काज छोड़कर सभा देखने आये।

स्त्रियाँ सभा-स्थानसे दूर चबूतरोंपर बैठीं। नारायणी भी जाकर उन्हींके साथ बैठी।

शुरूमें एक युवकने हारमोनियमपर कई गाने सुनाये। फिर सत्यव्रतजीने देशकी परतन्त्रताका अच्छा ख़ाका खींचा। अन्तमें दीनबन्धुजीका व्याख्यान हुआ। उसमें उन्होंने देशकी दरिद्रता, स्त्रियोंकी हीन दशा, विधवाओंकी दुर्गति, निर्धनोंकी कठिनाइयाँ और धनिकोंकी विलासिता आदि बातोंपर प्रकाश डाला। सुनकर कितने ही हृदय अत्यन्त कातर हो उठे, कितने ही तो निराशापूर्ण भावोंसे भर गये; कितने दीन-दुःखी स्त्री-पुरुषोंकी आँखोंमें आँसू छलछला उठे; कितनोंके हृदयमें आशाका प्रकाश छा गया—शक्तिका सञ्चार हो गया—देशभक्तिकी प्रेरणा प्रबल हो उठी।

सभा समाप्त होनेपर सब अपने-अपने घर चले। नारायणी सोचने लगी—"दुखियोंका दुख दूर करनेके लिये ये लोग गाँव-गाँव घूमते फिरते हैं; यदि पिताजी भी इनसे अपनी दशा कहें, तो ज़रूर ये ध्यान देंगे।"

यही सोचती-विचारती नारायणी अपने घर चली गयी। कंसपुरके लोगोंके कहनेसे दीनबन्धुको उस गाँवमें कुछ दिनके लिये ठहर जाना पड़ा। पञ्चायत-प्रथा और चरख़ेका प्रचार करने लगे।

सौभाग्य-दिवस

५

एक दिन प्रातःकाल कंसपुरके रघुनाथदासके साथ दीनबन्धु घूमते-घामते महेशके मकानके पाससे होकर निकले। महेश कष्टके मारे कराह रहे थे। दीनबन्धुने उनके मकानके दरवाज़ेके पास ठिठककर कहा—"यह कौन कराह रहा है?"

रघुनाथ—"महेशप्रसाद एक वृद्ध ब्राह्मण हैं, बीमार हैं।"

दीनबन्धु—"अवस्था क्या है?"

रघु०—"मेरी समझमें ५०से ऊपर होगी।"

दीन०—"उनके और कोई है?"

रघु०—"कोई नहीं, बेचारेकी बूढ़ी स्त्री भी चल बसी, बस अब एक लड़की रह गयी है। उसकी भी बड़ी दयनीय दशा है।"

दीन०—"सो क्या?"

रघुनाथदास संक्षेपमें नारायणीके विवाहकी कथा कह गये। दीनबन्धुने बड़े आग्रहसे पूछा—"महेशप्रसादको इस समय हम-लोग देख सकते हैं?"

"हाँ, चलिये" कहकर रघुनाथदास दीनबन्धुके साथ महेशके घरमें नारायणीको पुकारते हुए चले गये। उनके पास जाकर रघुनाथदासने प्रेमसे पूछा—"कैसे हो पण्डितजी?"

महेशने कष्टके साथ धीरे-धीरे करवट बदलकर कहा—"कैसे बतावें बेटा। मौतका रास्ता देख रहे हैं। कई दिनोंसे ज्वर आता है। शरीरमें पीड़ा बहुत है। सिर फटा जाता है। आ...ह...आ...ह..। बेटा, यह...और कौन...तुम्हारे...साथ है। हमें सूझता कम है।"

रघु०—"यह बाहरसे आये हुए हैं। असहयोगी हैं। महात्मा गान्धीकी बातोंका प्रचार करते फिरते हैं।"

महेश—"बेटा, गान्धीजी तो देवता हैं। उनके भक्त धन्य हैं। आह......आह !!"

दीनबन्धुने महेशकी नाड़ी देखकर कहा—"हम आपको अभी दवा देते हैं। शरीरकी पीड़ा बहुत कुछ कम हो जायगी। ज्वर भी धीरे-धीरे उतर जायगा।

महेश—"बड़ा पुण्य होगा बेटा। दुहाई गान्धी बाबाकी ! आह ..... आह !!"

थोड़ी दूरपर नारायणी खड़ी थी। महेशको देखकर लौटते समय उसपर दीनबन्धुकी नज़र पड़ी। आँखें बचाकर दवा लाने चले गये। सोचते जाते थे—"यह सयानी लड़की भी बेचारे बूढ़ेकी छातीपरका पत्थर हो रही है। ऐसी सुन्दरी और ऐसी अभागिनी ! हा विधाता !

नारायणीने पिताके पास जाकर कहा—"जिन्होंने दवा देनेके लिये कहा है, वही तो उस दिन सभामें बोलते थे। बड़ी अच्छी-अच्छी बातें कहते थे। उस दिन उनकी बातें सुनकर कितने ही आदमी रोने लगे। उनकी बातोंसे ... ।"

एकाएक दीनबन्धुने घरमें आकर कहा--"लीजिये पण्डितजी, दवा खा लीजिये। फ़ौरन आपको आराम मालूम होगा।"

नारायणी लज्जा और सङ्कोचके मारे झट वहाँसे हटकर अलग खड़ी हो गयी। महेशने एक बार आँखें खोलकर फिर

नारायणी लज्जा और सङ्कोचके मारे झट वहाँसे हटकर अलग खड़ी हो गयी। महेशने एक बार आँखें खोलकर फिर बन्द करते हुए कहा— "बैठो बेटा, तुम्हें तो बड़ा कष्ट हुआ।"

पृष्ठ १०

बन्द करते हुए कहा—"बैठो बेटा, तुम्हें तो बड़ा कष्ट हुआ।"

महेशकी बातका कुछ जवाब न देकर दीनबन्धुने नारायणी-की ओर देखते हुए कहा—"थोड़ा-सा जल लाइये, मैं अपने हाथसे अभी दवा खिला दूँ।"

नारायणीने एक लोटेमें जल दिया। दीनबन्धुने दवा खिला-कर कहा—"अब मैं जाता हूँ, कल फिर आऊँगा।"

महेशने धीरेसे कहा—"अच्छा……बेटा।"

६

महेशके शरीरकी सारी पीड़ा तो उसी दिन शान्त हो गयी। ज्वर भी तीसरे दिनसे उतर गया। ज्वर छूट जानेपर भी दीन-बन्धुने महेशकी सेवा-सुश्रूषा और स्वास्थ्य-रक्षाका यथेष्ट प्रबन्ध किया। वे शीघ्र स्वस्थ होने लगे। दीनबन्धु नित्य उनके घर जा-कर अपने सामने दवा खिलाते।

स्वस्थ हो जानेपर दीनबन्धुपर महेशका बड़ा स्नेह हो गया। दीनबन्धुकी बातें, उनका व्यवहार, उनका मधुर वचन महेशको अमृत-सा जान पड़ता। महेशने अपने आपको नितान्त आश्रयहीन और असहाय समझ लिया था। किन्तु दीनबन्धुको पाकर उनका निराधार जीवन बड़ा सुखी हो गया। पर कितने दिनोंके लिये?

अपनी असहाय अवस्थाका स्मरण करके एक दिन महेशने दीनबन्धुसे कहा—"बेटा, हम तुम्हारे बड़े ऋणी हैं। हमारे कौन था जो हमारी इतनी सेवा करता? हमें तो विश्वास हो गया था कि अब हम न बचेंगे। तुमने आकर हमारे प्राण बचा लिये।

न जाने किस क़लमसे विधाताने हमारी भाग्य-रेखा लिखी थी! इस लड़कीके सिवा इस संसारमें अपना कोई नहीं। विधाता ऐसा वाम कि इसका भाग्य भी फूटा निकला!"

महेशने अपनी विपन्न अवस्था और दुःखमय जीवन पं० रामप्रतापके निष्ठुर व्यवहारकी करुण कथा बड़े मर्मस्पर्शी शब्दोंमें दीनबन्धुको सुनायी। महेशकी बातें सुनकर दीनबन्धुकी आँखोंमें आँसू भर आये। महेश रोने लगे।

थोड़ी दूर अलग एक खम्भेके पास बैठी हुई नारायणी सब बातें सुन रही थी। दीनबन्धुने उसकी ओर एक बार बड़ी करुणापूर्ण दृष्टिसे देखा। वह अचञ्चल नेत्रोंसे एक ओर देखकर रह गयी, सिरका अञ्चल सरकाकर एक गहरी साँस खींच ली।

महेशको स्तब्ध देखकर दीनबन्धुने कहा—"पं० रामप्रताप-जीके लड़के प्रतापनारायणको इस बारेमें आपने कभी कोई पत्र लिखा?"

महेश—"हमने तो बेटा कभी नहीं लिखा।"

दीनबन्धु—"आपको लिखना चाहिये था।"

कुछ देरमें दीनबन्धु उठकर चले गये। नारायणी घरके काम-काज करने लगी। प्रत्येक क्षण दीनबन्धुका सद्व्यवहार, मधुर भाषण और सरल स्वभाव उसकी आँखोंके सामने घूमा करता, मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करती, उनके शान्त स्वरूपकी आलोचना करती और उनके सदय हृदयपर मुग्ध होती। जिस समय दीनबन्धु आकर महेशके पास बैठते और बातें करते,

नारायणी उस समय अप्रकट रूपसे उनकी सादगी, सरलता, पवित्रता और मनोहर मूर्त्ति देखा करती।

७

रघुनाथ दासके साथ एक दिन दीनबन्धु कहीं बाहर चले गये। उनके अन्यत्र चले जानेसे नारायणीके जीमें एक प्रकारकी बेचैनी-सी मालूम होने लगी। काममें उसका जी न लगता। बार-बार घरके बाहर आती, चारों ओर देखती; पर किसीको न देखकर घरमें लौट जाती। कभी काम करते-करते चौंक उठती। उसे जान पड़ता, मानों दीनबन्धु आ गये।

जब तीसरा दिन भी बीत गया, और वे न आये, तब उसकी बेचैनी बढ़ने लगी। जबतक उसने दीनबन्धुको देखा न था, कभी उसे ऐसा कष्ट नहीं हुआ था। पर आज वह दीनबन्धुको पराया नहीं, अपना समझती है। इसीलिये उसके हृदयकी व्यग्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। जिस समय महेश कहते—"जान पड़ता है, दीनबन्धु अब चले गये; जाते समय कुछ कह भी नहीं गये,"—नारायणीके हृदयपर उस समय वज्रपात-सा हो जाता। वह ऐसी उदास हो जाती, मानों कोई परम प्यारी वस्तु खो गयी हो।

दो दिन और बीत गये। दीनबन्धुके सद्व्यवहार और निर्मल चरित्रपर नारायणीके हृदयमें दिन-दिन अनन्य भक्ति उत्पन्न होती जाती थी। उसे यह स्मरण न रहा कि दीनबन्धु वास्तवमें अपने नहीं, पराये हैं; एक दिन रुलाकर चले जायँगे।

घरके आँगनमें उदास बैठी एक दिन नारायणी कुछ सोचती थी, तबतक अचानक दीनबन्धु पहुँच गये। नारायणी झट उठकर एक तरफ़ खड़ी हो गयी। हृदयमें हर्षके हिलोरे उठने लगे। 'सूखत धान परा जनु पानी !'

महेशको लेटे हुए देखकर दीनबन्धुने नारायणीसे पूछा—"क्या पण्डितजी सो रहे हैं ?"

नारायणी कुछ उत्तर न दे सकी, अपने तरङ्गित हर्षोल्लासको हृदयके अन्दर दबाते हुए चञ्चल नेत्रोंसे दीनबन्धुकी ओर एक बार देखकर बोली—"आप कहाँ चले गये थे ?"

दीनबन्धु—"एक दूसरे गाँवमें सभा करनेके लिये चला गया था।"

नारायणी—"जाते समय कुछ कह भी न गये थे, न जाने इतने दिनों में···।"

अचानक उसे अपनी दुर्बलताका ज्ञान हुआ। एकाएक अपनेको सँभालकर बोली—"पिताजी बराबर आपकी याद करते हैं।"

दीनबन्धु—"और आप ?"

नारायणीने मुस्कुराकर अपना सिर झुका लिया; सङ्कोच और लज्जासे सहम गयी; कुछ उत्तर न दे सकी।

दीनबन्धुने पूछा—"क्या पण्डितजी अभी नहीं जगेंगे ?"

नारायणीके कानोंमें दीनबन्धुका प्रश्न प्रवेश न कर सका। उसका चित्त अत्यन्त चञ्चल हो रहा था। उसने दीनबन्धुकी ओर

देखा, तो वे चिर-हितैषी—अत्यन्त प्रिय—जान पड़े; कुछ देर-तक बार-बार उसने उनकी ओर देखा, तो उसके कानोंमें हर बार यही सुन पड़ा—"और आप ?"

"अच्छा, अब मैं जाता हूँ, कल इसी समय फिर आऊँगा, पण्डितजीसे कह दीजियेगा।"

यह कहकर दीनबन्धु चले गये। दूसरे दिन आकर उन्होंने महेशसे भेंट की। बड़ी देरतक बातें होती रहीं। नारायणी वहीं कुछ दूर अलग बैठी सब बातें सुन रही थी। अन्तमें दीनबन्धु-ने महेशसे कहा—"पण्डितजी, आज मैं चला जाऊँगा; मेरी वजहसे अगर आपको कोई कष्ट हुआ हो, तो क्षमा कीजियेगा।"

दीनबन्धुकी बात सुनकर नारायणीका कलेजा काँप उठा। महेशने खाटपर लेटे-ही-लेटे कहा—"बेटा, तुमने मेरा बड़ा उप-कार किया है। अब मैं तुम्हें कहाँ देखूँगा ? तुम्हें पाकर इतने दिनोंके लिये मैं भाग्यशाली बन गया था। अब कौन मेरी सहा-यता करेगा ? तुम्हारे चले जानेपर मुझे जो कष्ट होगा, वह इसी समयसे आँखोंके सामने नाचने लगा। तुम तो जाते हो, जाओ, परमात्मा तुम्हें सुखी रक्खें; पर मुझसे कोई ऐसी बात कहे जाओ, जिससे जीको कुछ चैन मिले।"

महेशकी बातें सुनकर दीनबन्धुका शरीर रोमाञ्चित हो उठा। अनेक प्रकारसे उन्हें सन्तोष और सान्त्वना देकर सजल नेत्रोंसे बोले—"आप घबराइये नहीं, मैं घूमता-फिरता रूपनगर जाऊँगा, प्रतापनारायणको अच्छी तरह समझाऊँगा, समझा-बुझाकर

तुरन्त आपके पास भेजूँगा। मैं समझता हूँ, उन्होंने अभी-तक विवाह नहीं किया है। असहयोगी हैं। देशभक्त हैं।"

चलते समय दीनबन्धुने नारायणीकी ओर देखकर कहा—"आज म जाता हूँ, मैंने अगर कोई कष्ट दिया हो, तो क्षमा कीजियेगा।"

नारायणीके गालोंपर आँसूकी बूँदें लुढ़क पड़ीं। कुछ न बोल। गला भर आया। छाती धड़कने लगी। दीनबन्धु चले गये। महेश फूटकर रो पड़े। नारायणी पिताकी खाटसे लगकर रोने लगी।

८

दीनबन्धुको पाकर महेशको जो सुख प्राप्त हुआ था, वह न जाने कहाँ ग़ायब हो गया। महेश फिर अपनेको असहाय और अभागा समझने लगे।

दीनबन्धुको बिना देखे नारायणीकी आँखोंमें अन्धकार छा गया। रह-रहकर वह दिनमें कई बार चौंक उठती और अत्यन्त उत्सुकतासे दीनबन्धुके आ जानेकी आशा करती। जब एकान्तमें चुपचाप बैठती, तब कानोंमें अचानक दीनबन्धुकी मीठी वाणी गूँज उठती। रातको नींद नहीं आती कि स्वप्नमें भी दर्शनकी आशा पूरी हो!

नारायणीने पहले समझा था, दो-चार दिनमें भूल जाऊँगी। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते, त्यों-त्यों दीनबन्धुकी स्मृतिका वृश्चिक-दंशन असह्य होता जाता।

सचित्र चन्द्र कहानियाँ

पण्डित रमेशचन्द्र त्रिपाठी

जिस समय उसे स्मरण हो आता कि दीनबन्धु अब न लौटेंगे वह सोचने लगती—"वे एक परदेसी थे, मुसाफ़िर थे, यहां कुछ दिन रहकर अपने सद्व्यवहारसे सबको अपना लिया था। जीमें आया, यहाँसे चले गये। मैं उनके लिये क्यों व्याकुल हो रही हूँ? वे मेरे कौन थे? मुझे ईश्वरने तो अभागिनी बनाया है, मैं सोहागिन होनेकी फिर क्यों आशा करती हूँ?"

वह बहुत कुछ सन्तोष करती और अपना जी कड़ा करके निश्चय करती कि अब कभी उनकी याद न करूँगी; पर कुछ ही देरमें उसका हृदय फिर अधीर होने लगता। वह पुनः सोचने लगती—"वे मेरे कौन थे? जिसके थे, उसके यहाँ चले गये। जो वस्तु अपनी नहीं है, उसके लिये व्यर्थकी हाय-हाय कैसी? उनके वियोगकी व्यथा मेरे हृदयमें क्यों उद्वेग पदा कर रही है? मुझे उनके साथ इतना प्रेम करनेका क्या अधिकार है? मैं क्यों उन्हें चाहने लगी थी? क्या जो कोई मेरा उपकार करेगा, उसे ही मैं प्यार करने लग जाऊँगी? क्या जो कोई पिताजीकी सहायता करेगा, उसीपर मेरा इतना प्रेम हो जायगा कि उसे देखे बिना रहा न जाय? दूसरे पुरुषकी मीठी वाणी सुननेके लिये मैं क्यों अधीर हो रही हूं? किसी सुन्दर पुरुषपर मेरा इतना आसक्त हो जाना क्या अनुचित नहीं है? मुझ अभागिनीके भाग्यमें पुरुष है ही कहाँ? फिर कैसी बेचैनी?"

अनेक उलटी-सीधी बात सोचकर वह अपने आपको हर घड़ी कोसती रहती। किन्तु फिर भी उसका हृदय अधीर होनेसे

थाज़ न आता। वह बार-बार अपनी अन्तरात्मासे प्रश्न करती—"वे मेरे पास क्यों आये थे? मैं असहाया थी, दरिद्रा थी, दुःखिनी थी, जो कुछ भी थी; मैं उनसे अपना दुखड़ा रोने तो न गयी थी? उन्हें बुलाने भी तो नहीं गयी थी, फिर क्यों आये थे? कुछ दिन लगातार बार-बार आकर फिर एकबारगी चले क्यों गये?"

रात-दिन इसी प्रकार शोक-सन्तापकी ज्वालामें नारायणी जलने लगी। उसके हृदयमें तरह-तरहकी भावनाएँ उठतीं और हृदयके हाहाकारमें ही विलीन हो जातीं।

एक दिन सायङ्काल नारायणी महेशके सिरमें लगानेके लिये कोई दवा पीस रही थी। इतनेमें पड़ोसकी एक स्त्रीने घरमें आकर कहा—"रूपनगरसे प्रतापनारायण आये हैं। पालकी है, घोड़ा है, गाड़ी है, तीन-चार आदमी साथमें हैं।"

नारायणी घबराकर खड़ी हो गयी। महेश चकित होकर बड़ी उत्सुकताके साथ चारपाईसे उठे। लालटेन लेकर आगे बढ़ना ही चाहते थे कि एक खद्दरपोश नवयुवकने आकर उनके चरणोंका स्पर्श किया। नारायणी चकित और अवाक् होकर जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गयी।

महेशप्रसादने लालटेन ऊपर उठाकर विस्फारित लोचनोंसे नवयुवकका मुख निरखते हुए बड़े आनन्द और आश्चर्यके साथ कहा—"बेटा, तुमने मेरे साथ यह छल क्यों किया?"

उत्तरमें प्रतापनारायणने नारायणीकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। वह सिरका अञ्चल सरकाकर घरमें चली गयी।

पुनर्विवाह

विनोदिनी भोली-भाली है; पर उसके कपड़े साफ़-सुथरे नहीं हैं। वह प्रसन्नवदना और सुलोचना है; पर उसका शरीर सजाधजा नहीं है। घरका काम-काज करते हुए वह गा रही है—

"मैं जानों मोही पर बीती।
एक दिना सब ही पर बीती॥"

राजकिशोरने आँगनमें आते ही विनोदिनीका गाना सुना। उसका गँवारू गीत और मलिन वस्त्र देखकर वह घृणासे झुँझला उठा। लड़कपनसे कलकत्तेमें रहनेके कारण उसपर बंगाली रहन-सहन तथा आचार-व्यवहारका पूरा प्रभाव पड़ चुका था। उसे विनोदिनीका देहाती जीवन किसी प्रकार पसन्द न आया।

विवाहके दिनसे लेकर आजतक उसे विनोदिनीके साथ रहनेका बहुत कम अवसर मिला। छुट्टीके दिनोंमें जब कभी घर आता, विनोदिनीसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता। जीवनमें सरसता और शान्ति लानेके लिये जिन बातोंकी आवश्यकता वह अनुभव करता है, उनमें एक भी विनोदिनीमें नहीं। विनोदिनी मुक्तकेशी नहीं, शुभ्रवसना नहीं, हाव-भाव-कुशला नहीं, शृङ्गार-परायणा नहीं,

स्वच्छन्द-विहारिणी नहीं, फिर कलकतिया राजकिशोरकी आँखोंमें वह क्यों जँचने लगी?

छोटे-मोटे गाँवकी एक भोली-भाली लड़कीमें जितनी बातें हो सकती हैं, विनोदिनीमें सभी मौजूद हैं। किन्तु पाश्चात्य सभ्यताके विद्युत्प्रकाशसे जगमगानेवाली कलकत्ता-महानगरीके प्रलोभनमय वायुमण्डलमें पला हुआ राजकिशोर उस देहाती भोलेपनपर क्यों रीझने लगा?

विनोदिनीका गीत सुनते ही उसका देहातीपन राजकिशोरकी नस-नसमें विषकी तरह फैल गया। घरमें न जाकर दबे पाँव तुरन्त बाहर चला गया। सोचने लगा—"मुझ जैसे सौन्दर्य्योपासकके लिये विनोदिनी कदापि उपयुक्त नहीं है। कहाँ वह कलकत्तेकी वङ्गीय सुन्दरियोंका स्वच्छन्द नागरिक जीवन, कहाँ यह देहातकी बोदी भद्दी फूहड़ स्त्री! यह तो मेरे जीवन-सुधाधरकी कालिमा है। मुझे यह नीरस जीवन स्वीकार नहीं। मेरा ठाट-बाट, मेरी कालेज शिक्षा, मेरा साहित्यानुराग, मेरी सहृदयता, मेरी रसिकता, सब बेकार हैं।"

घृणापूर्ण झुँझलाहटके साथ ज़ोरसे 'बेकार हैं' कहकर हताश बैठ गया। इतनेमें श्यामसुन्दरने एकाएक आकर कहा—"राजकिशोर, क्या हो रहा है?"

राजकिशोर सावधानतासे सँभलकर अपने भावोंको छिपाते हुए बोला—"कुछ नहीं, योंही बैठा हुआ हूँ।"

श्यामसुन्दर आकर उसके पास बैठ गया। उसे चुप देखकर

श्यामसुन्दर बोला—"तुम्हारी छुट्टी पूजनेमें कितने दिन और हैं?"

राज०—"दिन तो अभी बहुत हैं; पर यहाँ जी नहीं लगता।"

श्याम०—"शहरी आदमीका जी देहातमें कैसे लगे? कहाँ गुलज़ार रौनक़दार कलकत्ता, कहाँ यह ठेठ देहात! मगर जन्मभूमिके नाते कुछ दिन तो यहाँ रहना ही पड़ेगा। और कुछ नहीं तो स्त्री बेचारीके ख़याल से—"

राजकिशोर बीच-ही-में बोल उठा—"स्त्रीसे मेरा क्या सम्बन्ध?"

श्याम०—"सम्बन्ध ही नहीं, तो विवाह क्यों किया था?"

राजकिशोरने कुछ ठहरकर उत्तर दिया—"विवाह कैसा? विवाह तो अनुकूलतामें होता है, प्रतिकूलतामें नहीं। जहाँ इतनी विषमता है, वहाँ विवाहका कोई अर्थ नहीं।"

श्याम०—"यह सब ठीक है; पर अब तो जो हो गया सो हो गया।"

राज०—"हो क्या गया? कुछ नहीं हुआ। ऐसा वैवाहिक बन्धन माननेके लिये मैं कदापि तैयार नहीं।"

२

विनोदिनीके प्रति राजकिशोरका घृणा-भाव सारे गाँवमें फैल गया। गाँववालोंमें बराबर इसकी चर्चा होने लगी। कोई कहता, विनोदिनी तो बड़ी सुघड़ और सुशीला सुननेमें आती है, न जाने राजकिशोर क्यों उससे फिरण्ट हुआ रहता है।

गाँवकी स्त्रियाँ भी जगह-जगह इसकी चर्चा करने लगीं। कोई कहती, विनोदिनी बेचारी तो बड़ी सुन्दरी है, देखने-सुननेमें बड़ी अच्छी लगती है। कोई कहती, गोरी-गोरी गठीली देह है, बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें हैं, चेहरेपर कितना पानी है, तो भी राजकिशोरके मन नहीं भाती।

इसपर एक तीसरी बोल उठती, इसीलिये लड़केको अंग्रेज़ी पढ़ाना-लिखाना अच्छा नहीं होता—बिगड़ जाते हैं—मेम चाहते हैं, तो यहाँ कहाँ मेम मिलेगी; ओह! जमाना एकदम बदल गया।

इस प्रकार, जितने मुँह उतनी ही बातें सुन पड़ने लगीं। गाँव-भरमें बात फैल जानेपर विनोदिनी अपने अपराधसे अपरिचित न रह सकी। पतिका तिरस्कार-भाव असह्य हो उठा। आत्म-ग्लानिसे व्यथित हो उठी। उसने अपनी अनुपयोगिताके लिये पतिसे क्षमा माँगनेका निश्चय किया; पर पतिके शुष्क व्यवहारने ऐसा सुअवसर न दिया।

जब वह अपने मायके—चाँदपुर—जाने लगी, तब चलते समय स्वामीसे दो-दो बातें करनेकी बड़ी चेष्टा की; पर स्वामीने इसकी आवश्यकताका बिल्कुल अनुभव नहीं किया। चाँदपुर पहुँचनेपर उसने एक पत्र भेजा, जिसमें यह स्पष्ट लिख दिया कि आप चाहें तो अपना दूसरा विवाह कर सकते हैं, मैं कुछ आपत्ति न करूँगी, बल्कि अपनी बहनको पाकर और भी आनन्दित हूँगी।

पत्र पाकर राजकिशोर कुछ भी विस्मित न हुआ। छुट्टी पूजते ही कलकत्ते चला गया। पर उसके दिलका बोझ उतर-सा गया। वह एक प्रकारका सन्तोष अनुभव करने लगा। दूसरा विवाह करनेमें जो सङ्कोच होता था, उसकी अब आवश्यकता न रही।

दिन-पर-दिन दूसरे विवाहकी लालसा बलवती होने लगी। मन-ही-मन वह भावी पत्नीके स्वभाव और गुणकी आलोचना करने लगा। कभी सोचता, यदि पत्नी सुन्दरी और सुशिक्षिता हो, उसके व्यावहारिक जीवनमें शिक्षा और सभ्यताका प्रकाश हो—कोमलता और मिष्ट भाषण हो, तो मेरा जीवन सुखी हो सकता है। कभी सोचता, देहातके शुष्क जीवनमें शिक्षित व्यक्तिके लिये कुछ भी आकर्षण नहीं है; देहातका निवासी होनेके कारण मेरे साथ एक ऐसी लड़कीका सम्बन्ध कैसे हो सकता है, जो नागरिक जीवनका सुख उपभोग कर चुकी है—जो शिक्षा और सभ्यताके प्रकाशमें पली है?

इसी प्रकार, कभी वह बङ्गालके शिक्षित समाजकी स्त्रियोंके व्यावहारिक जीवनपर विचार करता और कभी महाराष्ट्र तथा गुजरातकी स्त्रियोंके सामाजिक जीवनकी आलोचना किया करता। पर उसे कहीं भी पूर्ण सन्तोष नहीं मिलता। केवल उच्च-शिक्षा-प्राप्त हिन्दू-परिवारोंमें पाश्चात्य सभ्यताके यत्किञ्चित् प्रकाशपर ही उसे सन्तोष करना पड़ता।

बहुत कुछ आगा-पीछा सोचकर उसने युक्त-प्रदेशके एक
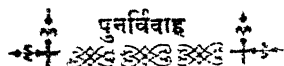
प्रसिद्ध हिन्दी-दैनिकमें अपने विवाहका सचित्र विज्ञापन छपा दिया। उसके छपते ही तीन पत्र आये। पर किसीको पढ़कर वह सन्तुष्ट न हुआ। उसे बड़ी निराशा हुई। दिन-रात उसके मनमें नाना प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प उठने लगे।

यों ही कई दिन बीत गये। अनायास एक दिन एक विचित्र पत्र प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था—

प्रिय महाशय,

आपका सचित्र विवाह-विज्ञापन देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। मेरी अवस्था १८ वर्षकी है। मेरे पिता बनारसके एक प्रसिद्ध वकील हैं। मैंने हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेज़ीकी यथेष्ट शिक्षा पायी है। मैं अपनी रुचि और इच्छाके अनुसार विवाह करने-को स्वाधीन हूँ। मेरे पिता मेरी इस स्वाधीनतापर बड़े सन्तुष्ट हैं। मैं अपनी वैवाहिक प्रतिज्ञापर हताश हो रही थी; किन्तु आपका विज्ञापन पढ़कर बड़ा सन्तोष हुआ। आप-ही-की तरह मैं भी केवल सुन्दरता, शिक्षा, सभ्यता और सहृदयता ही चाहती हूँ।

C/o आर० एस० वकील, *उत्तराभिलाषिणी*

प्रेम-भवन, काशी "सुन्दरी"

राजकिशोर पत्र पढ़कर पुलकित हो उठा। कई बार पत्र पढ़नेपर भी सन्तोष न हुआ। सोचा—"जिसके पत्रके प्रत्येक शब्दमें इतनी मधुरता और कोमलता है, वह स्वयं कैसी सुरसिका और शिक्षिता होगी। परिवार भी उन्नत है, विचार भी सभ्य हैं, अब और चाहिये ही क्या? इससे उत्तम सम्बन्ध कहाँ मिलेगा?"

३

चिरपोषित अभिलाषा पूरी हुई। मित्रोंने भी राय दे दी। सुन्दरीको स्वीकृतिकी सूचना भेज दी गयी। विवाहकी तिथि भी निश्चित हो गयी।

राजकिशोर सोते-जागते, उठते-बैठते और चलते फिरते मनमोदक खाने लगा—सुन्दरीकी ही चिन्ता, सुन्दरीका ही स्वप्न, सुन्दरीका ही ध्यान! अगर कहीं टहलने निकल जाता, तो किसी निर्जन स्थानमें बैठकर घण्टों सोचता रहता—"सुन्दरी वास्तवमें सुन्दरी होगी। उसके शिक्षिता और रूपसी होनेमें तो कोई सन्देह ही नहीं हो सकता। बनारसी रहन-सहन, बनारसी ठाट-बाट, बनारसी बोलचाल, सब कुछ सुन्दर और सुहावना होगा। जितनी बातें मैं चाहता था, विश्वनाथजीने सब-की-सब इकट्ठी ही दे दीं। सच कहा है—जेहिपर जेहिकर सत्य सनेहू, मिले सो ताहि न कछु सन्देहू!"

ऐसा सोचना राजकिशोरका नित्यका नियम हो गया। सोचते-सोचते विवाहका दिन निकट आ पहुँचा। तैयारियाँ धूमधामसे होने लगीं। राजकिशोरका हृदय नित-नूतन हृदयोल्लाससे नृत्य करने लगा। लालसाएँ उद्विग्न होने लगीं। वासनाओंकी बाढ़से हृदय परिप्लावित हो गया। एक ही धारणा, एक ही भावना और एक ही मनोरथने हृदयको आच्छादित कर लिया।

कल ही बारात बनारस जायेगी और आज ही सुन्दरीका एक पत्र आ पहुँचा। उसमें लिखा था—

महाशय,

आपको मालूम है कि मेरे विवाहका निर्णय मेरी प्रतिज्ञाके अनुसार अभीतक शेष है। दुःख है कि मैं आपको स्वीकृतिसे अब सहमत नहीं हूँ। मैंने अपना इरादा बदल दिया। आशा है, आप उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

"सुन्दरी"

पत्र पढ़कर राजकिशोरकी वही दशा हुई, जो आँधीमें केलेके वृक्षकी होती है। आनन्दके ऊँचे शिखरसे गिरकर मनोरथ चकनाचूर हो गया। शरीरकी रक्त-सञ्चालन-क्रिया रुक-सी गयी। तालूमें जीभ सटने लगी। मुख विवर्ण हो गया। विवाहोत्सवकी उमङ्गसे चेहरेपर जो प्रफुल्लता छा रही थी, उसे सुन्दरीके इस पत्रने चुटकियोंमें उड़ा दिया!

मित्रोंने साग्रह पूछा—"किसका पत्र है?"

राजकिशोरने लम्बी साँस खींचकर काँपते हुए हाथोंसे उस अप्रिय पत्रको मित्रोंकी ओर बढ़ा दिया।

सभी मित्र एकत्र होकर अत्यन्त उत्सुकतासे पत्र पढ़ने लगे। पढ़कर कुछ मित्रोंने उदास मनसे खेद प्रकट किया, और कुछने राजकिशोरकी विवेक-बुद्धिपर आश्चर्य। राजकिशोरने रोषावेशमें आकर कहा—"इस पत्रको मैं किसी प्रकार नहीं मान सकता। अब विवाह किसीके रोके न रुकेगा।"

एक मित्रने पूछा—'आख़िर विवाहके निश्चित होनेका कोई प्रमाण भी तुम्हारे पास ?"

राजकिशोरने आवेशपूर्ण उच्च स्वरमें उत्तर दिया—"प्रमाण ? प्रमाण तो ऐसा है कि विवाह कभी रुक ही नहीं सकता; पहले उसी तरफ़से प्रस्ताव हुआ है, अभीतक वह चिट्ठी मेरे पास है।"

मित्रोंने वह चिट्ठी लेकर उसके प्रत्येक शब्दको बार-बार बड़े ध्यानसे पढ़ा; पर किसी अक्षरसे भी यह ध्वनि न निकली कि विवाह निश्चित हुआ है। उस पत्रका कोई शब्द विवाहके लिये बाध्य करनेवाला न था।

मित्र बड़े चकित हुए। उन्हें राजकिशोरकी बुद्धिपर बड़ा तरस आया। उन्हें चुप देखकर राजकिशोरने पूछा—"अब क्या होना चाहिये ?"

एक मित्रने हँसते हुए कहा—"अब हो ही क्या सकता है ? जो होना था सो हो गया। इस पत्रसे तो किसी प्रकार यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि विवाह करनेकी स्पष्ट स्वीकृति मिली थी। इसमें न कहीं विवाहका प्रस्ताव है और न कहीं स्वीकृति अथवा अस्वीकृतिका स्पष्टीकरण ! फिर किस आधारपर विवाहके लिये ज़ोर दिया जाय ?"

राजकिशोरके पास कोई उत्तर न था। उसकी मानसिक अवस्था उस जुआरीकी सी हो गयी, जो दो-एक दाँव आ जानेपर अन्तमें अपना सर्वस्व दाँवपर रखकर हार गया हो और पुनः दाँवपर रखनेके लिये उसके पास कुछ न रह गया हो। वह

बिल्कुल निर्जीव-सा हो गया। उद्विग्नता और अधीरताने उसके चञ्चल हृदयका मन्थन कर डाला।

४

छुट्टी समाप्त हो गयी, मगर राजकिशोर अभी कलकत्ते नहीं गया। कब जायगा, जायगा या नहीं, इसका भी कुछ निश्चय नहीं। उसके जीवनमें बड़ा भारी परिवर्त्तन आरम्भ हो गया। अब उसका अधिकांश समय एकान्तमें चिन्ता करते ही बीतने लगा। आमोद-प्रमोदका चिन्ह भी न रह गया।

कभी-कभी सुन्दरीके दुर्व्यवहारकी याद आते ही उसके हृदयमें ईर्ष्याग्निकी ज्वाला धधक उठती। रह-रहकर भाग्यको कोसता, और कभी-कभी तो ईश्वरतकको फटकारते हुए कहता—"हे ईश्वर! तुम बड़े भारी मायावी हो। जो भूलें तुमसे होती हैं, वही अगर किसी साधारण मनुष्यसे हो जायँ, तो संसार उसे अयोग्य और अदूरदर्शी कह उठता है; पर तुम्हारी भूलें प्रत्यक्ष देखकर भी संसार उनकी उपेक्षा कर जाता है। जब सुन्दरीका विवाह मेरे साथ नहीं हो सकता था, तब मेरे साथ उसका पत्र-व्यवहार ही क्यों कराया? नारद-मोह-लीलासे जी नहीं भरा था कि मुझ ग़रीबको सतानेपर तुल गये? धन्य है तुम्हारी विडम्बना!"

इसी प्रकारके मनस्तापसे पीड़ित होनेके कारण राजकिशोर सूखकर काँटा हो गया। दिन-रात पश्चात्तापकी ज्वालामें जला

करता। ऐसे दुर्दिनमें उसके अस्थिर चित्तका कोई सहारा न रह गया।

अब रह-रहकर विनोदिनी याद आने लगी। बहुत विचार करनेपर भी बरसों बाद चाँदपुर जाकर अपनी रही-सही मान-मर्यादा नष्ट करनेका उसे साहस न हुआ। पर, और कोई उपाय भी न था। विनोदिनीको अपनी जीवन-सङ्गिनी बनानेके सिवा सुखी होनेका आख़िर कोई साधन न सूझ पड़ा। अन्तको चाँदपुर जाकर उसे बुला लानेमें ही अपना कल्याण समझा।

५

चाँदपुर जाते समय राजकिशोर रास्तेभर यही सोचता जाता था कि विनोदनीके हृदयमें मेरे प्रति घृणा और तिरस्कार-का भाव भर रहा होगा। किन्तु चाँदपुर जाकर जब वह विनोदिनोसे मिला, तब देखा कि उस साध्वीके भावोंमें रत्ती-मात्र भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है—उसके व्यवहारमें वही सरलता, वचनोंमें वही मधुरता, भावोंमें वही पवित्रता और विचारोंमें वही कोमलता विद्यमान है।

विनोदिनी जितना ही प्रेम प्रकट करती थी, राजकिशोरकी आत्मा सङ्कोचसे उतनी ही दबी जाती थी। उसका प्रेमपूर्ण सम्मिलन राजकिशोरके इतने दिनोंके दुर्व्यवहारोंपर धूल डाल रहा था। उसकी अटल श्रद्धा-भक्ति देखते हुए भी राज-किशोरके हृदयसे लज्जा दूर न होती थी। किन्तु उससे मिलनेके पहले राजकिशोरके हृदयमें जो भयका भाव था—तरह-तरहकी

शङ्काएँ थीं—अनेक प्रकारके सन्देह थे—सब दूर हो गये। यद्यपि राजकिशोरकी धारणा निर्मूल निकली, तथापि उसके हृदयकी निर्बलता किसी समय उसको प्रसन्न न होने देती थी। कभी वह विनोदिनीके निष्काम प्रेमको देखकर अपनी दुष्प्रवृत्तिपर पश्चात्ताप करता,कभी अपने जीवनकी चिर-पिपासा—सौन्दर्य्योपासना--के जाग्रत होनेपर अपनी असफलताके लिये आँसू बहाता और कभी सुन्दरीद्वारा प्राप्त होनेवाले भावी सुखोंकी कल्पनामें निराशाका अनुभव कर अपने शुष्क जीवनपर व्यथित होता। कभी सोचता, विनोदिनी शायद मेरे पुनर्विवाहकी बात नहीं जानती; इसीलिये वह पहलेके मेरे तिरस्कारोंको भूलकर प्यार जता रही है।

यही सोचकर एक दिन राजकिशोरने विनोदिनीसे अपने पुनर्विवाहकी सारी कथा कह सुनायी। वह बोली—"मैं ये सारी बातें जानती हूँ;फिर भी मेरे हृदयमें आपके प्रति वही भाव है, जो पहले था।"

राजकिशोरने चकित नेत्रोंसे उसके मुखको ओर देखते हुए कहा—"तुम ये बातें कैसे जानती हो?"

विनोदिनीने उसी तरह सरलतासे मुस्कुराकर उत्तर दिया—"सब जानती हूँ।"

राजकिशोरने अधीर होकर पूछा—"आख़िर तुमने जानी कैसे?"

विनोदिनी—"सुन्दरीको भी मैं जानती हूं।"

विनोदिनीकी ठुड्डी पकड़कर बोला—"यह मैं क्या सुन

राजकिशोरका धैर्य्य छूट गया। उसके विस्मयकी सीमा न रही। अत्यन्त अस्थिर होकर पूछने लगा—"क्या तुम बता सकती हो कि उसने मेरे साथ विवाह करनेसे इनकार क्यों कर दिया?"

विनोदिनी—"मेरे प्रति आपके व्यवहारोंका हाल मालूम होनेपर ही उसने ऐसा किया।"

राजकिशोर लज्जा और सङ्कोचके पङ्कमें गड़ गया। झेंपते हुए बोला—"क्या मैं सुन्दरीको क्षण-भरके लिये देख सकता हूँ?"

विनोदिनी—"क्या करेंगे देखकर?"

राजकिशोर उत्तर न दे सका। उसके हृदयकी अशान्ति बढ़ने लगी। विनोदिनीने उसे अत्यन्त अशान्त देखकर कुछ लजाते, कुछ सकुचाते और कुछ मुस्कुराते हुए कहा—"मुझे अपनी दासी समझकर क्षमा कीजिये; वह घृणाकी पराजय थी।"

राजकिशोर एकाएक बड़े ज़ोरसे चौंक उठा। विनोदिनीकी सुबुक ठुड्डी पकड़कर उसके भोलेभाले मुखको अपनी आँखोंके सामने करता हुआ बोला—"यह मैं क्या सुन रहा हूँ?"

समस्या

ललितमोहन एक कुशल कवि और चतुर चित्रकार है। मधुरतम सौन्दर्यकी उत्कट उपासना ही उसके जीवनकी एकमात्र साधना है। प्रत्येक सुन्दर वस्तुको आँखोंकी राह पी जाना, उसका मनोमुग्धकर चित्र अङ्कित करना और उसपर भावपूर्ण अनूठी कविताएँ रचकर एकान्तमें मन-ही-मन गुनगुनाते रहना—यही उसकी दिनचर्य्या है।

कभी वह अपनी लेखनी और तूलिका लेकर रमणीय उपवन-में चला जाता है। लता-कुञ्जमें बैठकर कभी जूही और चमेली-की मृदुल-मञ्जुल कलियोंका चित्र बनाता है, कभी कोमल-कान्त गुलाबकी सुकुमार पत्तियोंपर अपनी सरस कविता लिखकर गाते-गाते झूमने लगता है, कभी मोतिया और निवारीके पुष्प-गुच्छ-पर इन्द्रचाप-वर्णा तितलियोंका सोल्लास नृत्य देख मस्तीमें चुटकियाँ बजा-बजाकर गाया करता है।

कभी वह प्रातःकाल उन्मुक्त-स्रोतस्विनीके तरल-तरङ्ग-ताड़ित शीतल तटपर चला जाता है! जब स्वर्ण-कान्तिमयी ऊषा सूर्य्य-रश्मि-रञ्जित बहुरङ्गी साड़ी पहनकर गगन-मण्डलकी नाट्यशालामें थिरकने लगती है, जब मृदु-मन्द मलय-मारुत वन-वन डोलकर

कुसुम-कलिकाओंके सुरभित अञ्चलसे समुज्ज्वल शीत-विन्दु-मुक्ता-दल सञ्चित करता फिरता है, तब वह बड़ी सावधानीसे मुस्कुराते-मुस्कुराते अपनी तूलिका उठाता और कितने ही नये-नये भावमय चित्र बना डालता है।

उसने अपने बनाये सभी चित्रोंको अपने सजीले कमरेमें सजा रक्खा है। जब हम उसकी चित्र-कुटीमें जाते हैं, तब यही मालूम होता है—संसार सुन्दर-ही-सुन्दर है।

२

शरत्पूर्णिमाके दिन धरातल और नभतल लिपटकर कौमुदी-कल्लोलमें बहे जाते थे। जङ्गल-झाड़पर दूध बरस रहा था। शुभ्र चन्द्रिकाके सुधा-सम्पातसे वनस्पतियाँ प्रफुल्ल हो उठी थीं। रजनी-रमण तरङ्गोंमें लुक-छिपकर तारोंके साथ आँख-मिचौनी खेल रहे थे। ललितमोहन नदी-तटपर बैठा हुआ सरिताके विमल-धवल वक्षस्थलपर हर्षोल्लास-तरङ्गित लहरोंका थेई-थेई-नाच देख रहा था। वह चुपचाप तीरपर बैठकर नदीके स्फटिकोज्ज्वल हृदय-तलपर चन्द्र-तारोंकी रास-क्रीड़ा न देख सका। भूलकर अपने आपको—कूद पड़ा चन्द्रिका-धवलित गम्भीर जलमें! तैरता, गाता, उछलता और जल-केलि करता हुआ जब मँझधारमें पहुँचा, तब एक बार तटकी ओर देखा—अपूर्व दृश्य! एक शुक्लाम्बरा! मुक्तकेशी! अभिनव सुन्दरी! मन्मथ-नदी!—पैरोंमें मुखरित मञ्जीर! हाथोंमें कञ्चन-कलश!

वह पानी भरने लगी। ललित सोचने लगा—"कैसी अनोखी

शोभा है! क्या सुमिष्ट छवि है! यह स्वर्ग-दुर्लभ मूर्त्ति—अहा! चूड़ान्त सौन्दर्य्य है! विरञ्चि-नैपुण्यकी पराकाष्ठा है!

चित्राङ्कणका भावोद्रेक हुआ; पर तूलिका तो तीरपर पड़ी थी! उसे लेनेके लिये झट तटकी ओर तैरने लगा। पर कछार छूते-छूते वह दिव्य मूर्ति अदृश्य हो गयी! बड़ी ग्लानि और निराशा हुई।

३

उस दिनके बाद फिर कभी ललितकी दर्शनोत्कण्ठा तृप्त न हुई—वह हृदयहारिणी देख न पड़ी। कौन थी, कहाँसे आयी थी, कुछ पता नहीं!

वह अब कभी किसी उपवनमें या नदी-तटपर नहीं जाता। उसकी तबीयत सब तरफ़से उचट गयी। दिन-रात एकान्तमें पड़ा-पड़ा आहें भरता, और ये पंक्तियाँ गुनगुनाता—

"घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन-चक्र!

* * *

हुई मरुकी मरीचिका आज
मुझे गङ्गाकी पावन धार!!"

मुँह-ही-मुहमें गाते-गाते उन्मत्त-सा उठकर दर्पणमें अपना मुख देखते हुए शान्त भावसे कह उठता है—"क्या सचमुच इन्हीं आँखोंने वह चितचोर छवि देखी है?"

किशोर-बाबूसे प्रायः प्रेमके विषयमें अनेक प्रकारकी बातें हुआ करतीं। जब कभी मैं प्रेमकी बातें छेड़ता, बड़े चावसे सुनते। यहाँतक कि कभी-कभी तो वे मन्त्र-मुग्धकी तरह एकटक मेरे मुँहकी ओर निहारने लग जाते। यद्यपि एक प्रकारसे मेरे मित्र थे, तथापि उनके हृदयकी गुत्थियोंका न तो मुझे कुछ पता था और न मेरे हृदयकी गुत्थियोंका उन्हें।

एक दिन मैं अश्विनीकुमारदत्त-लिखित "प्रेम" पढ़ रहा था। किशोर-बाबू उस समय रोग-शय्यापर थे। करवट बदलते हुए धीरेसे बोले—"ज़रा ज़ोर-ज़ोरसे पढ़ो, मैं भी सुनूँ।"

"दूसरेको पुस्तक पढ़कर सुनाना बड़ी भारी लज्ज़ा है।"

"तुम्हें क्या मालूम; रोगीको पुस्तक पढ़ सुनाना बड़ी भारी सेवा है। रोगकी पीड़ा शान्त करनेके लिये चित्ताकर्षक और मनोरञ्जक पुस्तकसे बढ़कर दूसरा कोई अच्छा साधन ही नहीं है।"

"किन्तु मन-ही-मन पुस्तक पढ़नेमें जो आनन्द है, वह बाँच-कर सुनानेमें नहीं। ख़ैर, आपके मनोरञ्जनके लिये अपने आनन्दसे बाज़ आता हूँ। सुनिये। समझूँगा, रोगीकी सेवाका पुण्य ह लूटा।"

पढ़कर सुनाने लगा। बड़ी चाटसे वे सुनने लगे। सुनते-सुनते थोड़ी ही देरमें सो गये। मैंने सोचा, वास्तवमें सरस पुस्तकसे रोग-पीड़ित व्यक्तिको बड़ी शान्ति मिलती है। देखा, बड़े आरामसे सो रहे थे। नींद भी बड़ी सुगमतासे आ गयी थी। वाह रे 'प्रेम'!—मैंने पुस्तक चूम ली!—हफ़्तोंके बेचैन बीमारको चुटकियोंमें सुला दिया, जैसे स्नेहमयी जननीकी मीठी-मीठी थपकियाँ बच्चेको नींदकी गोदमें सुला देती हैं!

उनके सो जानेपर हाथमें पुस्तक लिये ही मैं सोचने लगा—"ईश्वरने इनका हृदय भी विचित्र ही बनाया है। इनको परखना क्या है, सारी सृष्टिका रहस्य जान लेना है। ये ब्रह्माकी अजीब कारीगरीके नमूने हैं। सरल भी हैं, और निष्ठुर भी। नम्र भी हैं, और उद्दण्ड भी। कभी डाके डाले, कभी धूनी रमायी, कभी उपदेशक बने फिरे, कभी अख़बारी दुनियाके आन्दोलक रहे। पूरे बहुरूपिया हैं। कभी तो दया और प्रेमका उज्ज्वल आदर्श दिखा-कर देवता बन जाते हैं, और कभी अत्यन्त जघन्य नारकी कृत्य करके प्रत्यक्ष राक्षस। मुक़द्दमेबाज़ीमें अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति स्वाहा कर चुके हैं, पर दूसरोंकी पञ्चायतमें दूधका दूध और पानीका पानी करके अदालतसे उनका पिण्ड छुड़ा देते हैं।

कवि इनके दरबारकी शोभा बढ़ाते हैं;पर इनपर भयङ्कर हत्याओंके कई सङ्गीन मामले भी चल चुके हैं। सङ्गीत-कलामें ऐसे दक्ष हैं कि तबला बजानेमें कई ज़िलोंमें अपना सानी नहीं रखते, और विलासी भी एक नम्बरके; पर दुराचारसे सरोकार नहीं—केवल सदाचार-ही-के कारण प्रतिष्ठित माने जाते हैं। फिर भी सुनता हू, कमलादेवीसे इनकी नहीं पटती। ईश्वर जाने, इसके अन्दर क्या रहस्य है।"

इसी तरह कुछ देर सोचता रहा; पर किसी परिणामपर न पहुँचा। फिर चुपचाप पुस्तक पढ़ने लगा। छोटी-सी रसीली पुस्तक, शीघ्र ही समाप्त हो गयी। इच्छा हुई, फिर एक बार दुहरा जाऊँ। पर, जब किशोर-बाबूकी ओर अनायास दृष्टि फेरी, तो देखा कि वे जग चुके हैं, आँखें लाल हो रही हैं। मेरे देखते ही उन्होंने भी मेरी ओर देखा। मैंने पूछा, फिर सुनाऊँ? आप पूरी नहीं सुन पाये, बीच-ही-में सो गये।

मेरा इतना कहना था कि उनकी आँखोंसे आँसुओंकी दो बूँदें सफ़ेद तकियापर टपक पड़ीं। मैंने पूछा, यह क्या किशोर-बाबू? ये आँसूकी बूँदें कैसी?

"कुछ नहीं, कोई बात नहीं, तुम पढ़ते चलो। मैं सोया नहीं था। एक ऐसी चिन्तामें डूब गया था कि बाहरका कुछ ज्ञान ही न था। किन्तु तुमने जितना पढ़ सुनाया,सबका मर्म समझ गया; प्रेम वास्तवमें अलौकिक पदार्थ है।"

"ना, अब मैं यह पुस्तक आपको न सुनाऊँगा। आपके

कोमल हृदयपर आघात पहुँचता है। मालूम होता है, आप सब तरहसे सम्पन्न होकर भी संसारमें प्रेमसे वञ्चित हैं। आपकी आँखें कह रही हैं।"

बस, उनकी आँखोंसे अनर्गल अश्रु-प्रवाह फूट निकला! बच्चोंकी तरह बिलख-बिलखकर रोने लगे! मैंने आजतक किसी-को इस तरह फूट-फूटकर रोते नहीं देखा था। अबतक मेरी यही धारणा थी कि प्रेमके लिये पुरुषका हृदय कभी करुण-कातर नहीं होता, केवल नारी-हृदयमें ही करुणाका निवास है। किन्तु यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई—भ्रान्ति निकली।

उनका रोना सुनकर नौकर-चाकर दौड़ आये—क्या है, क्या है, बाबू क्यों रो रहे हैं? कमलादेवीने अन्दरसे मालतीको भेजा। वह भी दौड़ी आयी—क्यों बाबू, कैसा जी है, क्या कहीं दर्द पैदा हो गया है?

उन्होंने झट आँसू पोंछ लिये। सिसकना एकाएक रुक गया। चेहरेपर प्रसन्नताकी जगह आत्म-दमनकी छाप पड़ गयी। एक साथ ही सबको टालते और उत्तर देते हुए बोले—"कुछ भी नहीं, बेकार तुम लोग चारों ओरसे 'बाबू-बाबू' चिल्लाते हुए दौड़ आये। जाओ, अपना-अपना काम करो। मेरी तबीयत बहुत अच्छी है।"

सब लोग चुपचाप चले गये। पर मालती अब भी खड़ी ही रही। कमलादेवी शायद किवाड़की आड़में खड़ी थीं। किशोर-बाबूने मालतीकी ओर देखकर कहा—"तू क्यों खड़ी है? तू भी

जा, कह दे कि कोई दर्द-वर्द नहीं है। तुम लोग बेकार ज़रा-सी बातको इतना तूल देती हो।"

मालती मुस्कुराती हुई चली गयी। मैंने फिर पुस्तक नहीं सुनायी। प्रसङ्ग ही पलट दिया। शतरञ्ज बिछी, रस बदल गया। बड़ी देरतक खेल जमा रहा। शाम हुई, तो मैं अपने घर चला आया।

२

एक महीना बीत गया। किशोर-बाबू पूर्ण स्वस्थ हो गये। उस दिन वह पुस्तक मैं उन्हींके यहाँ भूल आया था। एक मित्र माँगने आये, तो एकाएक उसकी याद आयी। पहुँचा उनके बँगले पर। उन्हें देखते ही उस दिनकी उनकी रुलाई याद पड़ी। मैंने कहा—"किशोर-बाबू, आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ। यदि आप बतानेका वचन दें, तो मैं पूछूँ।"

"हाँ, ख़ुशीसे पूछो, तुम कोई बात कहनेमें इतना सङ्कोच क्यों करते हो?"

"बात ही ऐसी है, जिसे पूछनेका अधिकारी केवल मित्र ही हो सकता है। सौभाग्यवश आप मेरे साथ मित्रवत् व्यवहार करते हैं, इसीलिये एक ऐसी बात पूछनेका साहस कर रहा हूं, जिसे कहनेमें आप अवश्य सकुचायँगे।"

"पूछो भी तो, इस भूमिकाकी क्या आवश्यकता है?"

"इसलिये कि आप आनाकानी न करें।"

"अच्छा, तुम पहलेसे ही मुझे ऐसा जकड देना चाहते हो कि

फिर मैं हिलने-डुलने न पाऊँ! कहो, कहो, मैं कुछ न छिपाऊँगा, सब कुछ बतला दूँगा।"

"तो बताइये कि उस दिन आप एकाएक रो क्यों उठे? उस रुलाईका सम्बन्ध किस घटनासे था?"

"यदि मैं जानता कि तुम आज फिर मुझे रुलाओगे, तो वचन-बद्ध न होता। धोखा हुआ। वह स्मृति फिर हृदयमें वेदना उत्पन्न करने लगी। सुनोगे, तो तुम्हें भी कष्ट होगा, और मैं तो—क्या कहूँ!"

"नहीं, मेरे लिये कष्टकर न होगा।"

"अच्छा, तुम बिना सुने न मानोगे, तो लो सुनो। मेरे लिये आज जीवनका यह पहला ही अवसर है कि तुमसे वह बात बतला रहा हूँ, जिसे जाननेवाले केवल तीन हैं—मैं, (उंगली उठाकर आकाशकी ओर इशारा करते हुए) वह, और एक प्राणी और, जो अब इस संसारमें नहीं है। तुम्हें यह न मालूम होगा कि उस दिन वही पुस्तक, जिसे मैंने तकियाके नीचे छिपा दिया था, रात-भर पढ़-पढ़कर मैं रोता रहा। फलतः दूसरे दिन फिर ज्वर हो आया। उसी दिन मालती उस पुस्तकको उठा ले गयी। अब वह पुस्तक कई तालोंके अन्दर होगी।"

"इधर-उधरकी बातें रहने दीजिये।"

"घबराते क्यों हो? मैंने उसी सिलसिलेमें ये बातें कही हैं। मैं मुख्य घटना कहने ही जा रहा था कि तुमने अधीर होकर छेड़ दिया। खैर, जिस साल नागपुरकी कांग्रेस हुई थी, उसी साल-

की घटना है। अमृतसरके प्रसिद्ध बैरिस्टर पण्डित शिवनारायण दर सपरिवार कांग्रेसमें जा रहे थे। वे थे, उनकी धर्मपत्नी थीं. और एक लड़की थी—उम्र उसकी लगभग १८-१६ वर्षकी होगी। डाक-गाड़ीमें उसे केवल एक बार मैंने देखा। उसने भी कदाचित् एक ही बार मुझे देखा। दूसरे दर्जेका डब्बा था। बिजलीकी रोशनी जल रही थी। उसके रेशमी वस्त्र चमक रहे थे। एक बार मेरी ओर देखकर वह खिड़कीसे बाहरकी ओर देखने लगी। पीठ मेरी तरफ़ थी। झीनी साड़ीमें लम्बी चोटी झूल रही थी। वह एक तरफ़ कोनेमें किनारेकी सीटपर थी, मैं दूसरी तरफ़ दरवाज़ेके पास। मेरी बग़लमें बैरिस्टर-साहब थे। उनसे देशके विषयमें बड़ी देरतक चर्चा होती रही। अन्तमें नागपुर-स्टेशनसे हम लोग अलग हुए। कांग्रेस-नगरमें उन्हें बहुत ढूँढ़ा, कितने कुँओंमें बाँस डाले, मगर पता न लगा। आख़िर भेंट नहीं हुई।"

"बस ? यहीं प्रेम-गाथाका अन्त हो गया ?"

"सुनो भी तो, कांग्रेससे घर आया। ठीक उसी दिन उस लड़कीका एक पत्र मिला। पत्र पाकर मैं सन्न रह गया ! पढ़ा, तो और भी चकित हुआ ! भगवानकी लीला बड़ी विचित्र है। प्रेम—कठोर और सरल, कटु और मधुर, विषाक्त और सुधासिक्त, कुसुममय और कण्टकमय होता है। मैंने जो सोचातक न था, वह आँखोंके सामने आया। जिसे देव-दुर्लभ समझता था, वह अपना निकला। जिस दिन वह पत्र मिला, उसी दिन मेरे जीवन-की विजयदशमी थी। कभी मैं वह पत्र तुम्हें दिखाऊँगा।"

"क्या इस समय नहीं दिखा सकते ?"

"अभी चुपचाप सुनते जाओ। उस पत्रका मैं उत्तर भी न दे पाया था कि दूसरा आ धमका! समझ लो, प्रति सप्ताह एक पत्र आने लगा। मैं बड़े फेरमें पड़ा। कभी पत्र लिखनेकी आदत नहीं—तमीज़ भी नहीं। किन्तु आवश्यकता बड़ी बलवती होती है। अनुभवमें भी बड़ी क्षमता है। न जाने प्रेमानुभवके कारण कहाँसे भाव-प्रकाशनका शब्द-स्रोत फूट पड़ा। यदि वे पत्र तुम्हें देखनेको मिलें, तो तुम्हारे आश्चर्य्यका ठिकाना न रहे। किन्तु प्रेम असम्भवको भी सम्भव कर देता है। मैं तो कल्पनाको अनुभवमय मानने लगा हूँ—बिना अनुभवके कल्पना सजीव नहीं हो सकती।"

"अच्छा, इतना बता दीजिये कि उसका नाम क्या है, और उसके पत्रोंमें कैसे-कैसे भाव हैं ?"

"नाम है 'कमला'। देखो तो, तीन अक्षरके इस शब्दमें कितनी कोमलता और मधुरता है। पत्रोंके भावका हाल न पूछो। पत्र क्या हैं, प्रेम-रसके लबालब प्याले हैं। एक-एक अक्षर हृदयके सलोनेपनसे शराबोर! बड़े ही अनूठे भाव, क्या कहूँ, हृदयमें माधुर्य्य छलछला उठता है। उसके पत्रोंमें क्या नहीं है, सब कुछ है। बस इतना ही समझ लो कि उनमें वह अपने हृदयकी ध्वनियोंके साथ मिलकर हँसी है, झुँझलायी है; विविध क्रीड़ाएँ की हैं। पर, सर्वोपरि उसकी सरलता ही है। उसके एक पत्रके भाव मुझे सदा स्मरण रहते हैं। देखो, कैसे निष्कलङ्क और ओजस्वी विचार हैं—

नाम है 'कमला'। देखो तो, तीन अक्षरके इस शब्दमें कितनी कोमलता और मधुरता है। [पृष्ठ ३३]

मेरी माता गुप्त रूपसे—मुझसे किसी प्रकारकी बातचीत या पूछताछ किये बिना—यह जानना चाहती हैं कि मैं किसे चाहती हूँ, किसके साथ मेरा वह पवित्र सम्बन्ध स्थापित हो, जिसका विच्छेद किसी जन्ममें नहीं होता। उसने मेरी इच्छापर ही यह भार छोड़ दिया है। तुम इस प्रथासे सहमत हो, या असहमत; पर मैं इतना अवश्य कहूँगी कि मेरी माता वास्तविक हृदय रखती है। हाँ, तो बोलो, उसे क्या बताऊँ? तुमसे ऐसा प्रश्न करनेका एक कारण है। मेरा यह हार्दिक सङ्कल्प है कि यह जीवन-कुसुम उसीके चरणोंपर चढ़ाऊँगी, जिसके कण्ठसे मृतकमें भी प्राण-सञ्चार करनेवाला सिंह-गर्जन और दीन-दुखियोंकी पीड़ा हरनेवाला तृप्तिकर वचन निकलता हो, जो देशकी पहली पुकारपर सबसे आगे कदम बढ़ानेको तैयार हो, जो क्रान्तिकारियोंमें सबसे ऊँचा स्थान पानेके लिये लालायित हो, जो स्वदेश-हित-साधनके लिये कुसुमसे भी कोमल और वज्रसे भी कठोर हो। अपने इस सङ्कल्पके अनुसार मैं तुम्हें ही उपयुक्त पा सकी हूँ। तुम तो संघर्षणके युगके लिये ही सुरक्षित रक्खे जानेयोग्य हो; पर धन्य होगी वह नारी, जो देशके लिये तुम्हारे फाँसी चढ़ जानेपर वैधव्य धारण करेगी। मैं किसी ऐसी लालसाके वशीभूत होकर तुम्हें नहीं चाहती, जो कभी क्षणिक सिद्ध हो सकती है। तुम भले ही अङ्गीकार न करो; पर मैं इस लोकमें रहूँ या परलोकमें—तुम्हारी ही होकर रहूँगी।

— ध्यानसे सुनते गये हो न ? कैसा भावपूर्ण पत्र है ! एक-एक शब्दमें ग़ज़बकी बिजली है ।"

"इसमें क्या शक ! मैं तो दङ्ग हूं । कुछ कहते नहीं बनता । इतना ऊँचा आदर्श, ऐसा विशाल हृदय, वाह ! कमाल है !"

"जब सुनने ही लगे, तब इस पत्रका उत्तर भी सुन लो, जो मैंने भेजा था । न जाने कहाँसे उस समय भावोंकी बाढ़ आ गयी थी. अब तो मैं वैसी कल्पना भी नहीं कर सकता । अब कभी-कभी अपने ही मनमें यह प्रश्न उठता है कि वास्तवमें क्या यह पत्र मेरी ही लेखनीसे निकला है । तुम भी सुनकर अन्दाज़ लगा सकते हो कि उस समय मेरी कल्पना-शक्तिमें कितना ओज था । मैं तुमसे उस पत्रका प्रत्येक शब्द कह रहा हूं, संक्षिप्त भाव नहीं—

'प्रिय कमले,

मैं तुम्हारे स्वरमें स्वर मिलाकर कहो तो 'हाँ' भी कर दूँ; पर हृदय स्पन्दनकी गति तीव्र हुई जा रही है, उसमें ज्वार-सा उठ रहा है । इसलिये, इसके भीतर प्रवेश न करो । कारण, सम्भव है, इस निकट भविष्यके भाटेमें मैं तुम्हें खो बैठूँ । सोच लो, उस दशामें क्या होगा । तुम्हारे शब्दोंसे मुझे अपने आपपर अविश्वास हो रहा है । सचमुच मैं अधम प्राणी हूँ । घरमें तुम्हारे ही अनुरूप एक 'कमला' और है । मुझसे उसे कुछ सुख नहीं मिला । जो मनोविनोद नारी-जीवनके लिये अनिवार्य्य है,

दाम्पत्य-जीवनकी शोभा है, वह उनसे सदा दूर रहता है। तुम्हारी भी यही गति होगी। तुम भी उसीकी तरह दिन-रात रो-रोकर तकिया तर करती रहोगी। अतएव, मेरे साथ ऐसे सम्बन्धकी आशा छोड़ दो।'

—मेरे इस पत्रका उसपर बड़ा प्रभाव पड़ा। पन्द्रह दिनतक उसका कोई पत्र नहीं आया। सोलहवें दिन जो पत्र आया, वह आँसुओंसे भीगा हुआ—लिपे हुए अक्षरोंमें—था। उन पुती हुई पंक्तियोंसे करुणाकी जो कातर ध्वनि निकलती थी, वह बड़ी मर्मभेदिनी थी। उस पत्रका म कोई उत्तर न दे सका। असह्य प्रतीक्षाके बाद उसने यह तार दिया—

'अपने स्वास्थ्यका शुभ संवाद भेजकर शीघ्र शान्ति प्रदान कीजिये। जीवन भार प्रतीत होता है। —कमला।'

—यह तार मेरे जेल चले जानेपर आया। असहयोग-आन्दोलनकी बड़ी धूम थी। जेलरने तार रोक लिया। किन्तु बात मुझे मालूम हो गयी। सोचा, पत्रोंमें मेरी गिरफ़्तारीका हाल पढ़ चुकी होगी; जेलसे छूटनेपर एक बार फिर उसे विस्तृत पत्र लिखूँगा। इसी प्रकार सोचते-सोचते छः महीने हो गये। मैं जेलसे छूट आया। घर आनेपर मैं अपने पूर्वकृत निश्चयके अनुसार उसे एक विस्तृत पत्र लिखनेका विचार करने लगा। दो सप्ताह बीत जानेपर भी मेरा विचार कार्य्यमें परिणत न हुआ। जब कभी पत्र लिखनेका इरादा करता था, इसी चिन्तामें पड़ जाता था कि पत्रमें क्या लिखूँ—अपनी चुप्पीके लिये कौन-सा

बहाना ढूँढ़ निकालूँ । इसी पसोपेशमें एक महीना बीत गया । पत्रोंमें मेरे छूटनेका समाचार पढ़कर वह आशा कर रही थी कि पत्र अवश्य आवेगा, आता ही होगा—आज नहीं आया, तो कल बाक़ी न रहेगा । किन्तु अन्तमें अत्यन्त हताश और अधीर होकर उसने अपने अन्तिम पत्रमें स्पष्ट लिख भेजा—

प्राणधन,

इस जीवनमें तुम अब मुझे नहीं मिलोगे । पर मैं कभी-न-कभी तुमसे अवश्य मिलूँगी । जीवनमें और कोई आकांक्षा ही नहीं है । तुमने मेरे पत्रोंका—तारतकका—कोई उत्तर नहीं दिया । सम्भव है, वे न भी पहुँचे हों । पर मैंने तुम्हारा समाचार पा लिया है । अब मैं अगले जन्ममें तुमसे मिलूँगी । आशा है, जिस समय यह पत्र तुम्हारे हाथोंमें पहुँचकर कृतार्थ होगा, उस समयतक संवादपत्रोंमें मेरा आत्म-हत्याका समाचार प्रकाशित हो जायगा । बहुत सम्भव है कि दोनों एक साथ ही तुम्हारी नज़रोंसे गुज़रें । भगवान करें निरन्तर तुम्हारे सुख-सौभाग्यकी वृद्धि हो ।—तुम्हारी भावी जन्म संगिनी कमला ।

—बस, यहीं यह गाथा समाप्त होती है । तुमसे अब अधिक क्या कहूँ ! पुरुष-हृदय सचमुच बड़ा निष्ठुर है । करुणामय कोमल नारी-हृदयके साथ इसका मेल नहीं खाता । पाषाण और पुष्प कभी मिलकर एक नहीं हो सकते । मैं अपने आपको बहुत आश्वासन देता हूँ, पर हृदयका दाह .....!"

इतना कहते-कहते किशोर-बाबू फूटकर रोने लगे। मैंने बहुत समझाया; पर न समझे—बड़ी देरतक बिलख-बिलखकर रोते रहे। किसी तरह उस समय मैं उनके हृदयसे विषाद और वेदना दूर न कर सका। उस दिन फिर उन्हें ज्वर आ गया।

३

कोई डेढ़ महीने बाद मैं जो किशोर-बाबूके बँगलेपर गया, तो वहाँका दृश्य देखकर मेरी धारणा ही बदल गयी। वे अदालती काग़ज़ात देखनेमें लगे हुए थे। बँगलेके पिछवाड़ेवाले कमरेसे मधुर सङ्गीत सुनायी दे रहा था।

मुझे देखते ही उन्होंने बड़े उल्लाससे मेरा स्वागत किया। साथ ही, यह उलाहना भी दिया कि तुम इतने दिनों बाद क्यों आये—और अगर बाहर ही गये, तो मुझे अपना पता क्यों नहीं दे गये?

मैंने हँसते-ही-हँसते कहा—"आज तो आप बड़े ही प्रसन्न देख पड़ते हैं। बात क्या है?"

"उधरके पीछेवाले कमरेसे जो मधुर सङ्गीत और हारमोनियमका हृदयहारी स्वर सुनायी दे रहा है, जानते हो, किसका है?"

"कोई कमनीय कामिनी-कण्ठ मालूम होता है।"

"केवल कण्ठ-स्वर ही पहचानते हो या कण्ठीको भी? फिर ध्यानसे सुनकर ठीक पहचानो तो।"

"कमला-देवीका स्वर मालूम होता है।"

"हाँ, है तो यह उसी नामवाली देवीका स्वर;पर यह 'कमला पहली 'कमला' का दूसरा संस्करण है।"

मैं चौंक पड़ा—एक ही महीना मैं बाहर रहा, और इसी बीचमें यह कैसा गुल खिल गया। यह तो रङ्गशालाके पट-परिवर्त्तन-सा हो गया। उस दिनकी आत्महत्या आज सङ्गीत-लहरों-में प्रवाहित होती देख पड़ती है। जहाँ विषादका आधिपत्य था, वहाँ आह्लादका साम्राज्य स्थापित नज़र आता है।

सचमुच इस दूसरी 'कमला' ने किशोर-बाबूके जीवन-मरु-स्थलमें मन्दाकिनी प्रवाहित कर दी। पहली 'कमला' से उनका जो बरसोंसे मनोमालिन्य चला आता था, उसे अपने प्रखर प्रेम-प्रवाहमें धो बहाया। जहाँ दो धाराएँ अलग-अलग बहकर भिन्न-भिन्न दिशाओंमें निरुद्देश्य चली जाती थीं,वहाँ यह तीसरी धारा, दोनोंको एकमें मिलाकर, प्रेमके परम-पावन त्रिवेणी-सङ्गमकी सृष्टि करती हुई, आनन्द-सागरकी ओर प्रवाहित होने लगी। नारी-हृदयकी मधुरताने दो तलवारोंका एक म्यानमें रहना सम्भव कर दिखाया।

किशोर-बाबूने बातों-ही-बातोंमें हँसकर कहा—"एक दिन उस जीवनके सम्बन्धमें भी बातें हुई थीं, तो वह—कौन ? नयी 'कमला'—बोली, 'प्रेम कभी जूठा नहीं होता'।"

कलंक-मोचन

मनोहर और दीनानाथ चचेरे भाई हैं ; पर दोनोंमें, बचपनसे ही, इतना प्रेम है कि सगे भाइयोंमें भी वैसा ढूँढ़े नहीं मिलता। दोनोंकी दादी उन्हें चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते देख-देखकर मन-ही-मन मुग्ध होती, और जब-तब कहा भी करती, खूब राम-लछमनकी जोड़ी बनी है।

अवस्थामें दीनानाथसे मनोहर चार-पाँच साल छोटा है। दीनानाथको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखता है। लंगोटिया यार होने-पर भी उनके सामने सोच-समझकर और शिष्टाचारका ध्यान रखकर बातचीत करता है। उसमें एक और ख़ूबी न जाने कहाँ-से आ गयी—दीनानाथके घरमें ऐसा घुल-मिल गया है कि सब कोई देखकर दङ्ग रहते हैं। अपनी माताको काकी कहता है और दीनानाथकी माताको अम्मा। दीनानाथके पितामें भी अपार श्रद्धा रखता है।

कुछ ही वर्ष बाद दीनानाथका विवाह हुआ। विवाहने इस प्रेम-बन्धनको ऐसा कस दिया कि ख़ूब कोशिश करनेपर भी किसीके तोड़े न टूटा।

दीनानाथकी स्त्री रामदेवी वास्तवमें देवी ही निकली। आते-आते अपनी व्यवहार-कुशलतासे परिवार-भरको अपने वशमें कर लिया। इस देवीके पुण्य-प्रतापसे किसानका झोपड़ा आनन्द-भवन बन गया।

अपनी नतबहूको पढ़ी-लिखी सुनकर बूढ़े दादाके उल्लासका ठिकाना न रहा। दादीसे, जब-तब, कहा करते—"बहूको तकलीफ़ न होने पावे। बहू हमारी देवी है। ईश्वरकी कृपा है जो हमारे अशिक्षित परिवारमें ऐसी सुशिक्षिता आयी।"

कभी-कभी मनोहरसे भी कहते—"जा, अपनी भौजीके साथ रामायण पढ़। मैं भी यहींसे सुनूँगा।"

मनोहरको यह आज्ञा बड़ी रुचिकर प्रतीत होती। दोनों मज़ेसे रामायण पढ़ा करते। इस संयोगने दोनोंमें शुद्ध प्रेमका बीज वपन कर दिया। मनोहर रामदेवीको माताके समान समझता, और वह भी उसे पुत्रवत् मानती। दोनोंमें इतना प्रेम बढ़ा कि जबसे मनोहरने अपने गाँवसे दस कोस दूर, आगरेमें, अंग्रेज़ी पढ़ना शुरू किया, तभीसे दोनोंमें पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया। रामदेवी ससुराल रहती या मायके, पर पत्र-व्यवहार बराबर जारी रखती।

परिवारकी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी; पर मनोहरके दादाकी उसे अंग्रेज़ी पढ़ानेकी बड़ी इच्छा थी। इसलिये उन्होंने उसे आगरेमें, अपने फुफेरे भाईके घर, जो कलक्टरीमें क्लर्क थे, रख दिया।

परन्तु एण्ट्रेन्सकी परीक्षाके सिर्फ़ चार ही महीने शेष थे कि मनोहरके दादाकी मृत्यु हो गयी। बस, दादाका स्वर्गवास मनोहरकी पढ़ाई बन्द होनेका सिगनल हो गया। घरवालोंमें उनकी भाँति न ख़र्च करनेकी हिम्मत और न उपार्जन करनेकी शक्ति हो। गृहस्थीकी चलती गाड़ी रुक गयी।

येन-केन-प्रकारेण मनोहरने एण्ट्रेन्स-परीक्षा पास की। बड़ी दौड़-धूपके बाद दिल्लीके एक इम्पोर्ट-आफ़िसमें क्लर्कीकी जगह मिल गयी। अपने अध्यवसायसे उसने उन्नति भी ख़ूब की। एक ही सालके अन्दर तीस रुपये मासिकसे बढ़कर पचास रुपये मासिकतक वेतन मिलने लगा।

२

संसारकी गति निराली है। कल यदि कोई समुन्नति-शिखर-पर विराजमान था, तो आज महान् पतनके गर्त्तमें नज़र आता है। कुछ ही समय पूर्व जो हमारा विश्वासपात्र था, जिसे हम बड़े आदरकी दृष्टिसे देखा करते थे, वही अब हमारी नज़रोंमें चोर, लम्पट, दुराचारी, सभी कुछ है। उसकी सूरत देखनेकी तबियत नहीं होती।

यही गति रामदेवी और मनोहरकी भी हुई। दोनोंके पत्र सन्देहकी दृष्टिसे देखे जाने लगे। माता-पिताको सन्देह होता कि लिफ़ाफ़ेके अन्दर कहीं नोट तो नहीं रक्खे होते। ज़रूर कुछ-न-कुछ रक़म मनोहर भेजता ही होगा। नहीं पचास रुपयेका महीना, और हमारे पास सिर्फ़ तीस ही रुपये प्रतिमास भेज पाता?

दिल्ली बड़ा शहर है तो क्या हुआ। बीस रुपये तो उसके अपने खर्चमें आ नहीं सकते। ज़रूर कुछ दालमें काला है। दूसरी बात यह कि पत्र वह हमारे नाम क्यों नहीं भेजता? बचपनकी भाँति अब भी हम लोगोंको ग़ैर तो नहीं समझता?

इसी तरह पिता एकबार मातासे कह उठे—"इस लड़केने तो हमारे वंशकी ख़ूब नाक कटायी। अब भी लड़कपनकी तरह काम करता है। सोचता भी नहीं कि अब सयाना हुआ, संसार-में समझ-बूझकर चलना चाहिये। बड़ी बहूके नामसे चिट्ठी आती देखकर भला गाँव-बस्तीवाले क्या कहते होंगे? क्या यह लज्जा-की बात नहीं?"

माता तपाकसे बोली—"अरे उसकी बात क्या कहते हो? मैं उसे ख़ूब पहचानती हूं। आगरेसे दो-चार दिनकी छुट्टीमें आता था, तो कभी भूले-भटके घड़ी-आध-घड़ी इस घर बैठता था। नहीं बराबर दीनूके चूल्हेमें ही घुसा रहता था। लोग कहते हैं, मनोहर बड़ा भोला है; जन्मसे लेकर अबतक कोई उसकी ओर अँगुली नहीं उठा पाया; किसीकी बहू-बेटीकी ओर आँख उठा-कर भी नहीं देखता। पर, मैं इन रँगे सियारोंको ख़ूब जानती हूं। और एकको ही क्यों दोस दूँ? वे नहीं, जो कुल-लच्छिमी बनी बैठी हैं! देखनेमें ऐसी भोली, मानों कुछ जानती ही नहीं। अब ईस्वर ही इस घरकी लाज रक्खे।"

३

नौकर होनेके बाद मनोहरने चिट्ठी-पत्रीका ऐसा नियम बनाया

कि मनी-आर्डर या बीमा पिताके नाम भेजता, और शेष पत्रादि या तो अपने ताऊके नाम, नहीं अपनी भावज—दीनानाथकी स्त्री—के नाम। रामदेवीके नाम पत्र भेजनेका कारण कुछ तो पारस्परिक प्रेम था, और कुछ उसके लिखने-पढ़नेका अभ्यास बनाये रखनेका ध्यान। सोचता, पहले तो घर-गिरस्तीमें पुस्तक छूनेकी फुर्सत नहीं मिलती; दूसरे, दादाके मर जानेके बाद घरके लोग इसे पसन्द भी नहीं करते। इसकारण, पत्र-व्यवहार-द्वारा ही कुछ-न-कुछ लिखने-पढ़नेका अभ्यास बना रहेगा। इस प्रकार 'एक पन्थ दो काज' होते हैं।

परन्तु परिणाम कुछ-का-कुछ हुआ। खुद घरके लोग ही देवर-भावजको बदनाम करने लगे। बस्तीकी स्त्रियाँ जब मनोहर-के घर आतीं और उसके सम्बन्धमें कुछ चर्चा छेड़तीं, तब उसकी माँ कह उठती—"मैं क्या जानूँ? मुझे तो कुछ लिखता नहीं, अपनी भौजीको चिट्ठी भेजता है; पता नहीं, क्या लिखता है। मैं तो मूर्ख ठहरी, जो कुछ सुना देती हैं, सुन लेती हूं। ठीक हो या गलत, राम जाने। हम लोगोंके नाम चिट्ठी लिखे, तो दो-चार आदमियोंसे पढ़ानेपर गलती-सहीका पता भी लग जाय। कलि-युग है। फिर अंग्रेजी पढ़कर न जाने लाज कहाँ गँवा दी। दुख यही है कि अपनी कोखका जन्मा अपने कहे-सुनेका न हुआ।"

४

घरवालोंके ताने-तिश्ने रामदेवीके हृदयमें बर्छीकी भाँति चुभते। वह बरदाश्त करनेकी भरसक कोशिश करती; पर

इसकी भी तो कोई हद होती है। लाचार, एक दिन रातको लेटे-लेटे सोचने लगी—"हाय, जब खुद घरके लोगोंकी ही यह दशा है, तब बाहरवाले क्या कहते होंगे? भगवन्! क्या तुम्हारा यही न्याय है? सब धान बाईस पसेरी? जो झूठे हैं, वे सच्चे समझे जाते हैं, और सच्चे हैं, वे झूठे? निस्सन्देह मैं उसे प्यार करती हूँ। जहाँ देखती हूं, जिधर दृष्टि फैलाती हूँ, वही नज़र आता है। ईश्वर जाने, पूर्वजन्मका क्या संस्कार है। और उसमें भोलापन भी कितना है। कितना सेवा-भाव है। चरित्रका कैसा पक्का है। मुझसे, अवस्थामें, मुश्किलसे एक-दो साल छोटा होगा। फिर भी मेरी बड़ी झिझक खाता है। कोई ऐसी बात ज़बानपर नहीं लाता, जो अनुचित समझी जा सके। चुटकियाँ लेतेमें मेरे मुखसे कभी कुछ अनुचित बात निकलनेपर तुरन्त सावधान कर देता है। मैं उसे प्यार भी करती हूँ, तो एक भोला बालक समझकर। पर, हाय! ऐसे उज्ज्वल सम्बन्धमें भी लोग कालिमाकी झलक पाते हैं। कुछ दिन पूर्व प्राणपतिको भी कुछ सन्देह हो गया था। मैं उस समय दुःखित अवश्य थी, पर इस प्रकार चिन्ताकुल न थी। मुझे साहस था। इस उक्तिपर विश्वास था कि 'साँचको आँच नहीं।' ख़ैर, उनका तो सन्देह-निवारण हो गया, पर अब यह दूसरा सन्देहका पहाड़ सिरपर आ लदा। इससे तो मैं ऐसी दबी कि पिसी जा रही हूं। मेरा पिछला साहस जवाब दे गया। पहले तो एकमात्र प्राणेश्वरकी बात थी; पर अब संसार-भरका सन्देह कैसे दूर हो। क्या

उससे पत्र-व्यवहार बन्द कर दूं, नाता तोड़ बैठूँ, उसे भूल जाऊँ ? परन्तु, क्या मैं ऐसा करनेमें समर्थ हो सकूँगी ? है इतना धैर्य ? पर, जो कुछ हो, अब वह पत्र-व्यवहार बन्द करती हूँ। प्यारे मनोहर ! तुम भी ऐसा ही करो। तुम यदि सचतुच कलङ्क-रहित प्रेमके भिखारी हो, तो तपश्चर्या करो कि भावी जन्म मेरी कोखमें ले सको। उसी समय मैं अपना यह आत्यन्तिक स्नेह चरितार्थ करूँगी।"

ऐसा दृढ़ निश्चय करके रामदेवीने पत्र-व्यवहार बन्द कर दिया। मनोहरका पत्र आये कई दिन हुए; पर कुछ उत्तर ही नहीं लिखा। खासी चुप्पी साध ली। मनोहरकी माँने कई बार पत्र लिखनेके लिये कहा, पर कान बन्द कर लिये।

एक दिन मनोहरकी माँ बहुत झल्ला उठी, पर मुखाकृति बदलकर बोली—"बहू, मनोहरकी चिट्ठीका जवाब लिख दो। बेचारा घबराता होगा। पहले तो तुम अपने आप, बड़ी फिकिरसे, लिखा करती थीं। अबकी बार क्या बात है कि इतने दिनपर भी लिखनेका नामतक नहीं लेतीं ?"

रामदेवी—"चाचीजी, अब चिट्ठी मैं न लिखूँगी। सबका मुझीपर सन्देह है, इसलिये अब और बदनामी नहीं सह सकती।"

मनोहरकी माँ—"अहहा ! बड़ी पतिव्रता हो। मैं सब जानती हूँ। साफ-साफ न कहलाओ। तुम्हींने अपने जादूसे, मेरे लड़केका मन मुझसे फटाया है। नहीं अपना लड़का होकर भी नेह न लगाये ? खूब आधी तनखाह हड़पती हो।"

यह कहा-सुनी सुनकर रोग-पीड़ित बूढ़ी दादी चारपाईपर उठकर बैठ गयीं। कराहते हुए बोलीं—"दीनूकी दुलहिन,...... चिट्ठी लिख क्यों नहीं देतीं?...क्या कुछ घिस जाओगी?... आखिर तुम्हारी चचिया-सास हैं। और फिर तुम्हारी सास मर चुकी हैं, इसलिये इन्हें ही सगी सास समझो। इनका कहना मानो।"

राम०—"सुन तो चुकी हो सब बात दादी। सास हैं, हर तरहकी सेवा करनेके लिये तैयार हूँ; पर झूठी बदनामी नहीं सही जाती।"

मनोहरकी माँ—"तो यह सब झूठ है? अरे लच्छिमी, मेरा भोला कन्हैया तुम्हारे ही छल-छन्दमें फँसकर बिगड़ गया।"

रामदेवी यह सब सुनकर, ख़ूनका घूँट लेकर, चुप हो गयी। मनोहरकी माँ बड़बड़ाती हुई बैठकमें पहुँची। मनोहरके पिता सुखबासीसे बोली—"सुनते हो, चिट्ठी किसी दूसरेसे लिखा लो।"

सुखबासी हैं तो सीधे-सादे, पर कहने-सुननेमें बडी जल्दी आ जाते हैं। पत्नीकी बात सुनकर बोले—"क्यों, बहू नहीं लिखेगी?"

पत्नी—"न, वे लच्छिमी क्यों लिखने लगीं? वे तो आधी तनखाह हड़पनेके लिये हैं।"

सुख०—"अच्छा, तो उन्होंने समझ लिया, उनके बिना चिट्ठी लिखी ही न जायगी। अरे एक डर है, घरकी बात बाहर हो जायगी; नहीं तो एक नहीं, तेरह चिट्ठी लिखनेवाले तैयार हैं!"

५

मनोहरके पास पत्र पहुँचते हैं ; पर अपरिचित लेखनीद्वारा लिखे हुए। पत्रोंमें घरका और सब हाल होता है ; पर रामदेवी-के सम्बन्धमें एक शब्द भी नहीं। इससे वह कुछ खिन्न रहने लगा। सोचता, भाभी कहीं अस्वस्थ तो नहीं हो गयी—किसी औरके लिखे पत्र क्यों आते हैं।

इसी प्रकार प्रतीक्षा करते-करते बहुत समय बीत गया। —प्रतीक्षा असह्य हो गयी। रामदेवीके नामसे एक छोटा-सा पत्र लिखा—

पूज्य भाभी,

चरणस्पर्श। बहुत दिनोंसे तुम्हारा कोई कुशल-संवाद नहीं मिला। चित्त चिन्तित है। तुम स्वस्थ तो हो ? पहले तो तुम सदैव मेरा पत्र देरसे पहुंचनेकी शिकायत किया करती थीं, पर इस बार तुम्हींने देर कर दी। कोई अक्षम्य अपराध तो नहीं हो गया ? शीघ्र उत्तर देकर चिन्ता दूर करो।

तुम्हारा वात्सल्य-भाजन—

मनोहर

६

जेठ मासका मध्याह्नकाल है। कड़ी दुपहरीमें घरके सभी लोग निद्राभिभूत हैं। सन्नाटा छाया हुआ है। सिर्फ़ मनोहरका छोटा भाई दामोदर, उसकी बहन सरोजिनी, और दीनानाथका छोटा भाई काशीनाथ, गाँवके और छोटे-छोटे बालकोंके साथ, दरवाज़ेके

येन-केन-प्रकारेण चिन्ता-सागरसे निकली। काँपते हुए हाथों-से लेखनी थामकर पत्र लिखने बैठी; पर स्नेहार्द्र हृदयके भावोंकी हिलोर आ गयी। आँसुओंसे काग़ज़ तर हो गया। किसी तरह जी कड़ा करके मानस-कुसुमोंको शब्दोंके धागेमें पिरोने लगी—

प्रिय मनोहर,

पत्र मिला। तुम्हें नहीं मालूम, मैंने पत्र-व्यवहार क्यों बन्द कर दिया। क्या तुम ऐसा सोच भी सकते हो कि म इस जीवनमें तुम्हें भुला दूँगी? पर क्या करूँ, बेबसी है। घरवाले हमारे पत्रोंको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं। अब हमारा वह सरल बाल्य जीवन गया। अब तुम भी सयाने हुए। हम दोनोंका पूर्ववत् सम्बन्ध—जो वास्तवमें शारदीय पूर्णिमाकी शुभ्र चाँदनीके समान स्वच्छ, गायत्री-मन्त्रके समान पवित्र,और सूर्य्यके समान निष्कलङ्क है—अब घरवालोंको सह्य नहीं। पर विश्वास रक्खो, यह बाधाएँ हम दोनोंका सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकतीं। तुम्हारी मञ्जुल मूर्त्ति निशिदिन मेरी आँखोंके सामने नाचती रहती है। यह लोग चाहे जितना भी प्रयत्न क्यों न करें; पर हमारा यह पवित्र प्रेम-बन्धन दिन-दिन और कसता जायगा। हमारा पत्र-व्यवहार भले ही बन्द कर दिया जाय; पर हम दोनोंकी आत्माएँ कदापि भिन्न नहीं हो सकतीं। मैं यहाँ हूँ, पर मेरे प्राण तुम्हारे ही पास हैं। इसलिये, अब कल्याण इसीमें है कि हम दोनों घरवालोंके सन्तोषके लिये—केवल उनके सन्देह-निवारणके लिये—पत्र-व्यवहार बन्द कर दें।

तुम्हारी हितैषिणी—
'भाभी'

७

अस्वस्थ होनेके कारण मनोहर आज आफ़िस नहीं गया। चारपाईपर लेटा—चिन्ताओंमें मग्न था। अनायास रामदेवीका पत्र मिला। खोलकर देखा, आँसुओंसे शराबोर! हृदयस्पन्दनको रोककर पढ़ा। इस पत्रने चिन्ताग्निमें घीकी आहुतिका काम किया। मुख-सरोज कुम्हला गया। मनोव्यथासे दो दिनतक पत्र लिखनेमें भी असमर्थ रहा। तीसरे दिन दिलके दर्दको प्रकट करने बैठा। लिखा—

पूज्य भाभी,

पत्र मिला। इस नासमझीके कारण तुम्हें कितना कष्ट होता होगा, इसका अनुमान कर हृदय विदीर्ण हो रहा है। पर इस कलङ्क-मोचनका यह उपाय नहीं, जो तुमने निश्चित किया है। यह तो उस सन्देहका और भी पृष्ठपोषण करेगा। यह मौनता तो उस कलुषित कल्पनाको सबके हृदय-पटलपर और भी मोटे-मोटे अक्षरोंमें अङ्कित कर देगी। इसलिये, यदि वास्तवमें हमारा प्रेम स्फटिकके समान शुभ्र, हीराकी भाँति ठोस और हिमालयकी भाँति दृढ़ है, तो हम लोगोंको इन नगण्य विघ्न-बाधाओंसे किञ्चित् भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं। हमारे साक्षी सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और आकाश हैं। साँचको आँच कभी नहीं लग सकती। प्रत्येक साधनाकी परीक्षा हुआ करती है। हमारे लिये यही मङ्गल मुहूर्त्त है, जिसमें हम दोनोंको प्रेम-साधनाको परीक्षाकी कसौटीपर कसनेका स्वर्ण-सुयोग प्राप्त हुआ है। इस कठिन

सामनेवाले छप्परमें रखी हुई बैलगाड़ीपर खेल रहे हैं। बच्चोंको खेलके सामने नींद कहाँ ?

अकेली रामदेवी अटारीपर लेटी है। उसकी आँखोंमें नींद कहाँ? अश्रुधारासे विस्तरको गीला कर रही है। मन-ही-मन कहती है—"हा जगदाधार! पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा घोर पाप किया था, जिसका यह कठोर दण्ड भुगत रही हूँ? क्या दण्डविधानमें और कोई दण्ड नहीं है? दुःखी हृदयको और दुखाना ही क्या न्याय है? मेरे इतने दुःखी रहनेपर भी यह बदनामीका सेहरा मेरे सिर क्यों बाँधा गया? अच्छा, मैं तुम्हींको अपना गवाह मानती हूँ। तुम्हीं बताओ, हम दोनोंके व्यवहारमें तुमने कोई भी ऐसा चिह्न पाया, जिसपर उँगली उठायी जा सके? तुम दीन-बन्धु हो, अपने इस नामको सार्थक करो। मेरी पीड़ा हरण करो।"

कुछ देरमें विचार-सागरमें डूबी हुई रामदेवी ऊपर उतरायी। साड़ीके छोरसे अपने लोल कपोलोंपर प्रबल वेगसे प्रवाहित अश्रु-प्रपातको पोंछा। जी कड़ाकर चारपाईपर उठ बैठी।

इतनेमें किसीके पैरोंकी 'धम-धम' आवाज़ सुन पड़ी। अपने हमजोलियोंके साथ 'भौदी, भौदी' पुकारता हुआ दामोदर आ पहुँचा। क्रोध प्रकट करता हुआ बोला—"भौदी, तुम हियाँ पली हो? अम थब दगह धून आये। लो अपनी चित्थी। दाकिया अवी आल दे गया है।"

रामदेवीने झट मुद्रा बदलकर उसके हाथसे पत्र छीन लिया।

बड़े प्यारसे उसके गालोंपर हलकी चपत जमाती हुई बोली—"जाओ, बाहर खेलो। शोर करोगे, तो सब लोगोंकी नींद उचट जायगी।"

लड़के 'धम-धम' करते हुए दौड़कर खेल खेलने बाहर चले गये। रामदेवी पत्र खोलकर पढ़ने लगी। पढ़ चुकनेपर एक गहरी साँस लेकर मन-ही-मन कहने लगी—"मनोहर! तुम नहीं जानते, पत्र न भेजनेका कारण क्या है। तुम्हें क्या पता, मेरे ऊपर आज-कल कैसी बीतती है। यदि मेरे बसकी बात होती, तो क्या पत्र-व्यवहार इस प्रकार अचानक बन्द कर देती?"

कुछ देर चिन्तामग्न रहकर फिर सोचने लगी—"हाँ, तो अब क्या करूँ? इसका उत्तर लिखूँ? अपने दृढ़ निश्चयसे खिसक पड़ूँ? लोक-लाजको ताकपर रख दूँ? समझ लूँ कि सामाजिक लोक-लज्जाका रोड़ा प्रखर प्रेम-प्रवाहके सामने एक क्षण भी नहीं ठहर सकता? पर, एक गृहस्थीके बीच यह कैसे सम्भव है? गृहस्थी भी ऐसी, जहाँ शास्त्रोंके नामपर रूढ़ियोंकी पूजा होती है, जो एक ही सन्देह-दृष्टिसे सारे जगत्‌को देखती है, जो सत्य और असत्यका विवेचन करनेमें असमर्थ है!—ऐसे अशिक्षित परिवारमें मेरा स्वतंत्र आचरण, चाहे वह बिल्कुल निष्कलङ्क ही क्यों न हो, क्या कभी निभ सकता है? तो क्या मनोहरके स्नेह-को एकदम बिसार दूँ? उसके पत्रका उत्तर न दूँ? पर, उस निरपराधको क्यों दुःख दूँ? कम-से-कम इसकी सूचना तो दे दूँ कि अब मैं तुमसे पत्र-व्यवहार नहीं रख सकती।"

परीक्षामें हमें कष्ट हो सकता है; पर अन्तमें हम निस्सन्देह खरा सोना सिद्ध होंगे। जब सब लोगोंको पता लग जायगा कि हममें मातापुत्रका-सा सम्बन्ध है, हम लोगोंका यह पूर्वजन्मका संस्कार है,और इस सम्बन्ध-बिम्बपर लेशमात्र भी कलङ्क-कालिमा नहीं है, तब निश्चय ही हमारी साधना सिद्ध होगी, लोगोंकी घृणा भी श्रद्धामें परिणत हो जायगी, और हम लोग इस नासमझ समाजके सामने एक आदर्श उपस्थित करनेमें समर्थ होंगे। मेरे इन शब्दोंपर विश्वास करो और पूर्ववत् व्यवहार रक्खो।

तुम्हारा स्नेहास्पद—

मनोहर

८

मनोहरकी माताका सन्देह चरम सीमातक पहुँच गया। सोचने लगी—"मेरा अनुमान ठीक मालूम पड़ता है। दीनूके भागमें क्या विधाताने यही कलङ्किनी लिखी थी? जब चिट्ठी लिखनेके लिये कहा गया, तब तो ढूँढ़े मिजाज नहीं मिला। फिर कैसे चुपकेसे लिख भेजी? अबकी कोई गुप्त चिट्ठी आवे, तो बीच-ही-में खुलवा लूँगी। पता लग जायगा, दोनों बेहया कहाँतक बढ़ गये हैं। उस बगुला-भगतकी भी सच्ची पहचान हो जायगी।"

वह यह बड़बड़ा ही रही थी कि मनोहरके पिता हाथमें एक बन्द लिफ़ाफ़ा लिये हुए आये। घरमें खेलते हुए दामोदरको देकर बोले—"बहूको यह चिट्ठी दे आ; उसीके नामकी है।"

क्रोधाग्निमें जलती हुई माताने रोककर कहा—"न दामोदर,मुझे

दे, इस चिट्ठीको आज यहीं पढ़वाऊँगी। आज बस अभी पापका भण्डाफोड़ हुआ जाता है। जा, बनवारीको तो बुलाता आ।"

मनोहरके पिताने बहुत समझाया, पर माताजी अपनी ज़िदपर अटल रहीं। तबतक बनवारी आया। चिट्ठी पढ़वायी गयी। सुनकर सब लोग अवाक् रह गये।

मनोहरकी दादी खाँसती हुई बोली—"काहे, मैंने कहा था कि नहीं? मेरे दीनू और मनोहर दूसरे राम-लछमन हैं। उसी तरह दीनूकी दुलहिनको सब लोग दूसरी सीता जानो। तुम लोग कलियुगी आदमी, इन देवताओंको क्या पहचानो?"

स्वावलम्बन

पूरनमल आगरेके सेठ सूरजमलका एकमात्र पुत्र है। सेठ-जीकी रहन-सहन इतनी साधारण थी कि उन्हें दूकानपर बैठा देखकर कोई आदमी उनको मामूली मुनीमसे अधिक न समझ सकता था। पूरनमलको ऊँची शिक्षा देनेके लिये सेठजीने कुछ उठा न रक्खा। ख़र्चके लिये भी वे पूरनका हाथ न रोकते थे। उसका ठाट-बाट किसी राजकुमारसे कम न था।

पूरनकी गाड़ी किसी तरह 'एण्ट्रेन्स' पारकर एफ० ए० तक पहुँची। आगे बढ़ना असम्भव हो गया। कारण, कालेजमें चिन्तामणि महाशयका लेक्चर हुआ; उन्होंने देशके नवयुवकोंको नौकरियोंकी लालसा छोड़कर वाणिज्य-व्यवसायकी ओर झुक-नेको ललकारा। बस, पूरनने उसी दिन अमेरिका जानेका दृढ़ निश्चय कर डाला।

बेचारे सूरजमल पुराने विचारोंके सीधे-सादे आदमी थे। समुद्र-यात्राको शास्त्र-विरुद्ध समझते थे। विदेशमें नौजवान लड़केका आचार-विचार बिगड़ जानेके भयसे उन्होंने इस प्रस्ताव-का विरोध किया। पर अन्तमें लड़केके हठके सामने झुकना ही

पड़ा। अमेरिका-यात्राके लिये सब तरहका प्रबन्ध कर दिया। यथासमय पूरनमल अमेरिका पहुँचकर शिकागोके कमर्शियल कालेजमें पढ़ने लगा।

२

अमेरिकाका स्वतन्त्र जीवन बड़ा ही विचित्र है। वहाँ ऊँच-नीचका भेद-भाव नहीं है। प्रत्येक मनुष्य अपनेको समान समझता है। दिन-भर होटलमें जूठे बरतन माँजनेवाला, अथवा गली-गली दियासलाई बेचनेवाला, शामको अच्छे कपड़े पहनकर क्लबमें जाता है। वहाँ बड़े-से-बड़ा अफ़सर या रईस भी उसे तुच्छ दृष्टिसे नहीं देखता।

पूरन भी एक दिन एक क्लबमें रातको 'डान्स' देखनेको जा पहुंचा। वह उस समय बहुमूल्य 'चाइना-सिल्क' का एक बढ़िया सूट पहने हुए था। उसे देखकर युवक-युवतियाँ हँस रही थीं। थोड़ी देरमें वह ताड़ गया कि इनकी हँसीका लक्ष्य मैं ही हूँ। बस, झुँझला कर उठ चला।

उसके सहपाठी हेरियटने पास आकर धीरेसे कहा—"मिस्टर पूरन, इस समय तुमको काला सूट पहनकर आना था। तुम्हारी इसी भूलपर लोग हँस रहे हैं। मेरे पास दूसरा 'सूट' तैयार है। अभी 'ड्रेसिङ्ग-रूम'में चलकर बदल सकते हो।"

पूरनमल तो योंही झल्लाया हुआ था, समझा यह भी मज़ाक कर रहा है। वह जानता था कि हेरियट रात-भर होटलोंमें जूठे बरतन माँजकर अपनी जीविका चलाता और कालेजमें पढ़ता है।

अतः उसने बड़ी घृणा और क्रोधके साथ कहा—"तुम इस कपड़े-का मूल्य क्या समझोगे ?"

हेरियटने मुस्कुराकर बड़ी कोमलतासे कहा—"प्यारे भाई मेरे, इसमें न तो ग़रीब-अमीरकी कोई बात है, न तुम्हें तङ्ग करना ही किसीका मतलब है। तुम्हारी एक मोटी भूलपर स्वभावतः सबको हँसी आ गयी, तो इसमें बुरा माननेकी कोई बात नहीं। भिन्न-भिन्न देशकी भिन्न-भिन्न रीति होती है।"

पूरन—"तुम तो होटलोंमें दिन-रात चायके जूठे प्याले उठाया और माँजा करते हो, तुम इस अपमानको क्या समझोगे ? मेरे देशमें होते, तो मज़ा मालूम हो जाता।"

हेरियट—"वाह ! यह ख़ूब कही ! अगर मैं अपना पेट पालने-के लिये कोई काम करता ही हूँ, तो इसमें लज्जाकी कौन-सी बात है ? शायद तुम तो मुझसे भी गये-बीते हो ; क्योंकि तुम अपने ख़र्चके लिये दूसरोंपर निर्भर रहते हो, और मैं ख़ुद परिश्रम करके कमाता-खाता हूँ।"

पूरन—"मेरे यहाँ तुम-जैसे सैकड़ों नौकर पड़े हुए हैं, क्या अपने साथ मेरा मुक़ाबला करते हो ?"

हेरियट—"अरे भाई, सम्भव है, तुम्हारे पिता या घरवाले बड़े मालदार हों, रईस हों; पर उनके सौभाग्यपर तुम क्यों गर्व करते हो ? ख़ैर, मुझे माफ़ करो, अपनी बात वापस लेता हूं।"

३

यथासमय ख़ास तौरसे चमड़ेके व्यापारकी शिक्षा पाकर

पूरन जब अमेरिकासे अपने घर आया, तब सेठ सूरजमलकी मृत्यु हो चुकी थी। मरते समय सेठजी अपना कुल कारोबार पुराने मुनीम लखपतिरायको सौंप गये थे। अमेरिकासे वापस आनेपर पूरन स्वयं भी अपने कारोबारकी देख-भाल करने लगा।

सेठजीकी आमदनी अधिक और खर्च बहुत कम था। वे प्रति वर्ष कुछ-न-कुछ धन-सञ्चय कर लिया करते थे। किन्तु पूरनने आरम्भसे ही ख़ूब शान-शौक़तके साथ रहना सीखा था। अब ऊपरसे पाश्चात्य सभ्यताका रङ्ग भी गाढ़ा चढ़ गया। फिर क्या, बहुत जल्दी ही वह अपने शहरका सबसे बड़ा रईस और शौक़ीन गिना जाने लगा। उसकी कोठीकी सजावट देखनेको दूर-दूरसे लोग आते थे। उसकी मोटरें और लैण्डो-जोड़ियाँ देख कर लोग दङ्ग रह जाते थे।

वयोवृद्ध मुनीम लखपतिराय और पूरनमलमें पटती न थी। पुराने ढर्रेके मुनीमजीका देशी गद्दीपर बैठना पूरनको पसन्द न था। वह अपने समान एक ऐसे सूट-बूटधारी चलता-पुर्ज़ा आदमीको आफ़िसमें अँगरेज़ी ढङ्गसे बैठकर काम करते देखना चाहता था, जो बड़े-बड़े लोगोंसे अपनेको "मिस्टर पूरनमल सेठ-का मैनेजर" कहकर मिला करे, जिससे प्रतिष्ठित लोगोंमें पूरनकी धाक बँधी रहे।

फलतः सारा स्टाफ बदल डाला गया। पूरनका एक ग्रेजुएट सहपाठी श्यामसुन्दर मैनेजर बनाया गया। पूरनमलकी इच्छाके अनुसार ही सब काम होने लगा।

पूरन शिमला, मंसूरी, नैनीताल और दार्जिलिङ्गकी यात्रा तथा बड़े-बड़े हाकिम-हुक्कामसे मिलनेमें ही साल-भर व्यस्त रहा करता। खर्च भी रजवाड़ोंके-से हुआ करते। आख़िरकार आमदनी सिकुड़ने लगी, खर्च फैलने लगा। मगर आदत न छूटी। शौक़की हवाने अमीरीकी जलती हुई मोमबत्तीको आनन-फ़ानन घुलाकर बहा दिया। फिर वही अंधेराका अँधेरा! फूक-तापकर छुट्टी!

४

जिस आगरेमें पूरन अपने ऐश्वर्यके दिन देख चुका था, उसी आगरेमें बुरे दिन भी देखने पड़े। सोचा, कहीं परदेशमें चलकर कोई नौकरी करके निर्वाह करना चाहिये; बैठे-बैठे भाग्यको कोसनेसे क्या फ़ायदा।

बिगड़े दिनोंपर आह भरता और अपनी पिछली करतूतोंपर पछताता हुआ कानपुर पहुँचा। वहाँ अमेरिकावालोंके चमड़ेके कारख़ानेमें एक जगह ख़ाली होनेकी ख़बर लगी। उसी समय अर्ज़ी भेज दी। अर्ज़ीमें अपनी सिफ़त भी लिख दी।

कारख़ानेके मैनेजरने उत्तरमें आफ़िसके समय उपस्थित होनेके लिये बुला भेजा। पूरन समयपर जा पहुँचा। साहबने बड़ी देरतक ध्यानसे पूरनके मुखकी ओर देखा। फिर कौतूहल और उत्सुकताके साथ पूछा—“क्या आपने शिकागोके कालेजमें शिक्षा पायी है?”

पूरनने विनीत भावसे उत्तर दिया—"हाँ साहब, मैं वहाँ दो वर्ष पड़ा हूँ। ख़ास तौरसे इसी कामको सीखा है।"

साहबने झट कुर्सीसे उठकर पूरनका हाथ पकड़ते हुए कहा—"क्या आप आगरेके मिस्टर पूरनमल सेठ हैं? अपने विनोदी साथी हेरियटको आप नहीं पहचानते?"

पूरन यह वाक्य सुनकर चौंक उठा। बार-बार ध्यानपूर्वक देखा, सामने वही हेरियट बैठा था, जिसे उसने अमेरिकाके एक होटलमें एक दिन बुरी तरह फटकारा था। लज्जासे सिर नीचा कर लिया। हेरियट मुस्कुराने लगा।

बड़े आदर-सत्कारके साथ पूरनको कुर्सीपर बिठलाकर थोड़ी देर बाद हेरियटने पूछा—"आपने तो कहा था, हमारे पिता बहुत बड़े धनाढ्य रईस हैं; फिर आप यह छोटी-सी नौकरी क्यों चाहते हैं? स्वयं अपना कारख़ाना क्यों नहीं खोल लेते?"

पूरनपर सौ घड़े पानी पड़ गया। धरती फट जाती, तो समा जाता। आँखोंमें आँसू भरकर धीरेसे बोला—"मेरा बाप करोड़-पती था, पर मेरे घरमें आज शामका खाना भी नहीं है!"

रायबहादुर मदनमोहन झाके इलाकेमें सबसे धनी रामधन-मिश्र समझे जाते थे। मिश्रजीने जब अपनी कन्याका विवाह झाजीके पुत्र श्यामाचरणके साथ करनेकी इच्छा प्रकट की, तो झाजी कृतार्थ हो गये।

प्रारब्धकी बात, मिश्रजीकी कन्या कलावतीकी शादी श्यामा-चरणके साथ हो गयी। कलावतीका चाँद-सा भोला-भाला मुखड़ा देखकर श्यामाचरणने अपना जन्म सार्थक समझा। उसके गुलाबसे लाल और कोमल चेहरेकी ओर देखनेसे वह तृप्त न होता था।

एक दिन कलावती उससे पूछ बैठी—"तुम इस तरह सदा मेरा मुँह क्यों निहारा करते हो, चित्र खींचोगे क्या?"

श्यामाचरण—"कलावती, तुम नहीं जानती। मैंने तुम्हारा चित्र खींच लिया है।"

कलावती—"तो ज़रा मुझे भी दिखाओ। देखूँ, कैसा उतरा है, कब खींचा था? मुझे तो पता भी नहीं।"

श्यामाचरणने गम्भीर होकर कहा—"नहीं कला, मैं न दिखाऊँगा। वह आँखोंसे देखनेकी चीज़ भी नहीं है। वह एक

अपूर्व चित्र है। उसे देखनेके लिये दिल चाहिए। दिल देकर वह चित्र देखा जा सकता है।"

कलावती व्यंग्यसे बोली—"ओहो, आजकल तुम चित्रकार भी हो गये हो, और कवि भी। चलो, रहने भी दो, आये हो मुझीसे बातें बनाने।"

श्यामाचरण—"नहीं कला, वास्तवमें वह एक अपूर्व वस्तु है। हृदय-पटपर उस रक्त-रञ्जित चित्रकी छटा बड़ी ही अनूठी है। सच मानो, वह एक दर्शनीय वस्तु है।"

कलावती वहाँसे उठकर चली गयी।

२

श्यामाचरणको आजतक अपनी कुछ फ़िक्र न थी। रोज़गारकी क्या दशा है, यह भी मालूम न था। पिताकी मृत्युके बाद जब हिसाब-किताब देखा, तब मालूम हुआ कि लगातार तीन वर्षों से घाटा होता आ रहा है, बहुत-सा क़र्ज़ लद गया है।

बेचारा अजीब उलझनमें फँसा। आजतक कभी दुःखका स्वप्न भी न देखा, आज सहसा विपत्ति टूट पड़ी। अक़्ल गुम हो गयी। रुपया न मिलनेके कारण कुछ दिनोंके बाद लहनदारोंने सारी सम्पत्ति नीलाम करा ली। बेचारेके भाग्यमें भयानक परिवर्त्तन हो गया। कहाँ लाखोंकी सम्पत्तिका अधिकारी, कहाँ आज दर-दरका भिखारी! भगवान्‌की लीला अपरम्पार है!

बेचारेने एक मिलमें साधारण क्लर्की कर ली। उसीसे माता और स्त्रीके साथ एक किरायेके छोटे-से मकानमें गुज़र करने

लगा। कलावतीको वह बहुत चाहता था। उसकी दृष्टिमें वह प्रेमकी मूर्त्ति थी। उसके लिये वह सब कुछ करनेको तैयार रहता था। पर कलावती उसे तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती थी!

जो पति स्त्रीको गहनोंसे लाद न दे, उसे सब तरहका आराम, अच्छा मकान, बढ़िया भोजन, सुन्दर वस्त्र और पढ़नेके लिये अच्छे-अच्छे उपन्यास न दे सके, वह पति कहलाने योग्य नहीं—ऐसा कलावतीका ख़याल था।

श्यामाचरण शामको थका-माँदा घर आता। मनमें सोचता, घर पहुँचते ही कला हाथ पकड़कर बैठायेगी, जलपान ले आयेगी, प्यारी-प्यारी बातोंसे मन बहलानेकी चेष्टा करेगी, और करेगी मेरे इस दुःखमें समवेदना-प्रकाश!

पर ऐसा न होता था। बेचारेका यह ख़याल केवल ख़यालके लिये ही होता था। मिलसे आकर जब वह कलाके कमरेकी ओर जाता, तो उसे आता देख, उसके चेहरेपर श्रमजनित अवसादका चिह्न देख, घृणाकी हँसी हसकर वहाँसे उठ जाती। बेचारा हाय मारकर रह जाता।

३

इसी प्रकार कितने ही दिन बीत गये। श्यामाचरणने सोचा, कला मुझसे दिनोंदिन उदासीन होती जा रही है। कहा—"कला, न हो तबतक एक बार पीहर हो हो आओ। यहाँ आजकल तुम्हें बहुत तकलीफ़ हो रही है।"

कलावतीने झुंझलाकर जवाब दिया—"हाँ, यही सोच रही हूँ। पिताजीको पत्र भी लिख दिया है। एक-दो दिनमें कोई मुझे लेनेके लिये आवेगा ही।"

श्यामाचरणका मुँह छोटा-सा हो गया। सोचा, कलाने मुझसे बिना पूछे ही अपने पिताको पत्र लिख दिया! मेरी बात तक न पूछी! मैं किसी गिनतीमें न रहा!

मन मसोसकर उसी दिन काशीके लिये रवाना हो गया। इधर कलावतीके पीहरसे आदमी आ पहुँचा। अभीतक श्यामाचरणकी माताको यह बात मालूम न थी। उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने कलावतीको बुलाकर कहा—"बहू, तेरे पीहरसे तुझे लेनेके लिये कोई आदमी आया है। बबुआको काशीसे आने दे, तब जाना। वह खुद ही तुझे पहुँचा देगा।"

कलावतीने रुखाईसे तनकर उत्तर दिया—"और इन्हींके साथ चली जाऊँगी, तो क्या कुछ बिगड़ जायगा? ये कोई बिराने थोड़े ही हैं। जनम-भर इनके पिताने हमारे यहाँ मुन्शीका काम किया है। मेला भैयासे बढ़कर अपना कौन होगा?"

श्यामाचरणकी माताने कहा—"बहू, कुछ बात भी तो समझा कर। बिना जाने-सुने तू कैसे चली जायगी? लोग क्या समझेंगे?"

कलावतीने और भी रुखाईसे कहा—"लोगोंको जो समझना हो, समझा करें। इससे मेरा क्या बिगड़ा जाता है? रही उनके जाननेकी बात, सो वे आने-ही-पर जान लेंगे, तो क्या बुराई है?"

४

काशीसे लौटनेपर श्यामाचरणने सब हाल सुना। उसके दिलपर गहरी चोट लगी। जिसे वह इतना प्यार करता है, जिसके लिये वह अपनेतकको न्योछावर कर सकता है, उसीने मायके जाते समय ज़रा राय पूछनेकी भी आवश्यकता न समझी! काम-काजसे बेचारेका चित्त उचट गया। सदा कला-की बात सोचा करता।

कई पत्र लिखे, उत्तर एकका भी न मिला। एक दिन ससु-रालके लिये पयान किया। जिस समय वहाँ पहुँचा, उसके ससुर कई मित्रोंके साथ बैठे बातें कर रहे थे। वह भी प्रणाम कर बैठ गया। बड़ी देरतक बैठा रहा। पर रामधनजी अपने मित्रोंके सामने एक दरिद्रको अपना जामाता स्वीकार करनेमें असमर्थ रहे। लाचार, श्यामा घर लौट आया। दुःख, क्षोभ और आत्मग्लानिसे उसका हृदय दिन-रात जलने लगा।

एक बरस और बीत गया। इस बीचमें श्यामाने ससुराल जानेका नाम भी न लिया। पर आख़िर उससे न रहा गया। सोचा—"इसमें कलाका क्या दोष है। अगर वह सुन पाती, तो ज़रूर मुझसे मुलाक़ात करती। अच्छा, अबकी बार चाहे जैसे हो, उससे भेंट करके ही दम लूँगा। जहाँ एक बार उससे भेंट हुई, तहाँ सब काम फ़तह। ज़रूर वह अपने व्यवहारपर पछता रही होगी।"

यही सोचकर अबकी फिर श्यामा ससुराल चला। पर डग न उठते थे। मनमें कभी आशा और कभी निराशाकी बिजली कौंध उठती थी। किसी क़दर ससुराल पहुँचा। अबकी मरदानी बैठक-में न जाकर, सीधे ज़नानख़ानेमें ही जानेकी ठानी। ड्योढ़ीपर एक 'महाराज' बैठे ऊँघ रहे थे। बोले—"कौन है रे सार, कहित ही कि मालिक नहिं न घरे माँ। नबौ सार—"

तिरस्कृत और हताश श्यामा फिर घरकी ओर लौटा। ग्लानि और लज्जासे आत्महत्या कर लेनेकी इच्छा हुई; परन्तु फिर कलाकी याद आते ही सँभल गया। कलाका प्रेम-बन्धन न टूटा। इतना अपमान सहकर भी कलासे निराश न हुआ।

अबकी श्यामा घर नहीं लौटा। घर जानेका साहस ही न हुआ। वहीं कलाके घरके चारों ओर पागलकी भाँति चक्कर काटने लगा। इसी समय उसके एक साथीने आकर उसके कानमें कुछ कहा। सुनकर श्यामा सन्न रह गया। उसके पाँव-तलेसे धरती निकल गयी।

सन्ध्या हो चुकी थी। चन्द्रमाकी शीतल किरणें भूमण्डल-पर बिखर रही थीं। सारा जगत् शीतल प्रकाशसे जगमगा रहा था। रजनीगन्धा और जूही आदिके फूल खिलकर वायु-मण्डलको सौरभसे स्निग्ध बना रहे थे। चारों ओर शान्तिका साम्राज्य था। यदि कहीं अशान्ति और क्रोधकी विषम ज्वाला धधक रही थी, तो वह था श्यामाका हृदय। उसका हृदय श्मशानकी भाँति भयङ्कर हो रहा था। धीरे-धीरे मिश्रजीके

बगीचेके पिछवाड़े जा पहुँचा। चहारदीवारी बहुत ऊँची न थी। उसपर चढ़कर बगीचेके अन्दर कूद गया। दबे पाँव आगे बढ़ा। हवाके झोंकेसे पत्ते हिलते, और वह काँप उठता। पैरोंसे सूखी पत्तियाँ चर्रातीं, और वह दहल जाता। उल्लू इधर-से-उधर पङ्ख फड़फड़ाते, और वह सन्न हो जाता। इसी प्रकार, धीरे-धीरे बगीचेके बीचमें गया। वहाँ जो कुछ देखा, उससे ख़ून खौल उठा—कलावती, जिसे वह प्राणोंसे अधिक प्यार करता था, जिसकी मोहिनी मूर्त्तिपर वह जी-जानसे लट्टू था, जिसको वह संसारमें सबसे अधिक सुन्दरी समझता था, मेलारामकी बग़लमें एक ही बेञ्चपर बैठी थी!

बस, अब और न देखा गया। वहाँसे निकलकर फिर सड़कपर आ गया। क्रोध, दुःख और घृणासे काँप रहा था। अङ्ग-अङ्गसे आगकी लपटें निकल रही थीं। लम्बी साँस खींचकर आकाशकी ओर देखा। मालूम हुआ, दिशाएँ दानवीकी तरह काट खानेको दौड़ी आती हैं। नक्षत्र-मण्डलके साथ आकाश चक्कर खाकर गिरा पड़ता है। तूफ़ानी समुद्रमें डगमगाते हुए जहाज़की तरह पृथ्वी डोल रही है। कानोंमें 'झायँ झायँ' शब्द और आँखोंके सामने भयानक अन्धकारके सिवा कुछ भी न रह गया!

५

संसारमें रुपयेके बिना कुछ भी नहीं। धन, मान, यश, मर्यादा—सब रुपयेके दास हैं। श्यामाने देखा कि बिना रुपया

कमाये, बिना धनी बने, मैं संसारमें किसी कामका नहीं हो सकता। यही सोचकर रुपया कमानेके लिये घरसे निकल खड़ा हुआ। जाकर रेलवेमें नौकरी कर ली। रुपये कमानेकी धुन सवार ही थी, जी-तोड़ काम करने लगा। धीरे-धीरे सभी अफ़सरोंको अपनी मुस्तैदी और मिहनतसे ख़ुश कर लिया। तरक्की करते-करते कुछ ही बरसोंमें ख़ूब रुपया पीटने लगा। यहाँतक कि थोड़े ही दिनोंमें उसके पास एक अच्छी रक़म जमा हो गयी। तब एक व्यापार खोला। भाग्य पलटा, पुनः लखपति हो गया।

रामधन मिश्रके गाँवके पास ही 'रामनगर' एक गाँव था। वह नीलाम हो रहा था। श्यामाने उसे ख़रीद लिया। वहीं रहने भी लगा। मगर अपना असली नाम छिपाकर कल्पित नाम रामसुन्दर दुबे प्रसिद्ध किया।

मिश्रजीने रामनगरके नये ज़मींदार रामसुन्दर दुबे की प्रशंसा सुनी, तो एक दिन कुछ सोचकर मिलने चले। सोचा, अधिक बूढ़े न होंगे, तो भी उमर ज़रूर कड़ी होगी। पर जब देखा, तो सन्देह दूर हो गया। फिर भी पूछ बैठे—"आपकी अवस्था कितनी होगी?"

रामसुन्दर—"यही २८-२९ की होगी।"

मिश्रजी—"ऐं! फिर आपके बाल इतने सफ़ेद कैसे हो गये?"

राम०—"मैं एक बार बहुत बीमार हो गया था। उसी समय मेरे सब बाल पक गये।"

६

रामनगरके ज़मींदार रामसुन्दर दुबेके साथ मिश्रजीकी सुन्दरी सुशीला कन्या चन्द्रावतीका ब्याह हो गया। 'कोहबर' का क्या कहना! मालूम पड़ता था, रूपकी हाट लगी है। हारमोनियमपर एक युवती गा रही थी—'सैंया बेदरदा बड़ दुख दीना रे—'

इसी समय छम्-छम्-झम्-झम् करती हुई कलावती अन्दर आयी। आते ही बोली, बन्द करो गाना। गाना-बजाना बन्द हो गया। कलावती खुद हारमोनियम लेकर बैठ गयी। एकने वरसे कहा—"कुछ गाइये, बहन बजाती हैं।"

वर—"मैं गाना नहीं जानता।"

कई रमणियोंके मुँहसे एक साथ ही निकल पड़ा—"ऐं, गाना नहीं जानते, तो क्या बजाना जानते हैं?"

वर—"नहीं, वह भी नहीं।"

दूसरी बोली—"बड़े नीरस मालूम होते हो जी।"

वरने लजाकर कहा—"कहानी कहना खूब जानता हूं।"

सब एक साथ ही बोल उठीं—"कैसी कहानी?"

वरने मुस्कुराकर कहा—"बड़े मज़ेकी कहानी।"

सभी सुन्दरियाँ हँसते-हँसते चारों ओरसे वरको घेरकर बैठ गयीं। वरने कहानी शुरू की—

"इसी प्रकार धूमधामसे उसका ब्याह हुआ था"—

रोककर एकने पूछा—"किसका? उसका नाम क्या था.. घर कहाँ था?"

दूसरी ने कहा—"अः, यही तो अच्छा नहीं लगता, बीचमें टोकती क्यों हो ?"

वरने छूटते ही कहा—"और साथ ही यह भी शर्त्त है कि बीचमें मुझे टोककर कोई कुछ पूछने न पायेगा। जो हारमोनियम लिये बैठी हैं, वे ही केवल हुँकारी भरेंगी।"

सब एक स्वर से बोल उठीं—"अच्छा, अच्छा, आप कहिये, अब कोई न टोकेगा। सब कोई चुप रहो जी, कहने दो।"

फिर भी वरको चुप देखकर कलावती बोली—"अबकी बार कोई न बोलेगा, तुम कहो न भाई।"

कलावतीकी ओर देखकर वर कहने लगा—"अप्सराके समान सुन्दरी स्त्रीसे उसका व्याह हुआ था। उस स्त्रीके गालपर एक तिल था—"

अपने सिरकी साड़ी सरकाती और गालका तिल छिपाती हुई कला चौंक उठी, हुँकारी देती गयी। वर कहता ही गया—"उसका पति उसे बहुत चाहता था। तीन ही वर्ष दोनों सुखसे साथ रहे। चौथे साल पतिका पिता मर गया। खोटे दिन आये। ज़मीन-जायदाद बिक गयी। घर-बार भी नीलाम हो गया। पेट पालनेके लिये एक मामूली नौकरी कर ली। दिन-भर काम करके थका-माँदा जब घर आता, तब स्त्री वहाँसे हटकर दूर चली जाती।"

कलावतीका कलेजा काँपने लगा। छाती धड़कने लगी। धीरेसे हुँकारी दी। सबको उत्कण्ठित देखकर वर कहता गया—

"एक दिन पति कहीं बाहर चला गया। इतनेमें मायकेसे बुलाहट लेकर आदमी आ गया। सासकी बात टालकर वह पीहर चली गयी—अपने बापके एक साधारण नौकरके साथ। जानेके समय एक बार भी पतिकी सुध न आयी।"

कलावतीने तीव्र दृष्टिसे वरकी ओर देखा। उस दृष्टिमें कितनी व्यथा भरी हुई थी! वरने जारी रक्खा—"पतिने दिलका दर्द लिखकर स्त्रीको भेजा। सोचा, इससे पिघल जायगी। पर उसने पत्रका उत्तर भी न दिया। योंही विरहके कुछ दिन कट गये। जब पतिसे न रहा गया, तब ससुराल गया। पर धन-मदसे मत्त ससुरने बात भी न की।"

कलावतीके शरीरमें मानों कोई विषकी बुझी छुरी भोंक रहा था। वह ज्यों-की-त्यों बैठी रह गयी। वरको चुप देखकर एकने उत्सुकतासे पूछा—"उसके बाद?"

वर—"उसके बाद फिर एक बार ससुराल गया। स्त्रीसे मिलना चाहा, पर दर्शन न हुए। संयोगकी बात, उसने एक अजीब ख़बर सुनी। सुनते ही ससुरके बगीचेकी ओर चला। भीतर जाकर एक पेड़की आड़में खड़ा हो गया। निखरी चाँदनी-में देखा, उसकी स्त्री—"

कलावतीका रक्त सूख गया। अपनेको सँभाल न सकी। बेहोश होकर गिर गयी। सारे घरमें कुहराम मच गया। रङ्गमें भङ्ग हो गया! कलावतीके होशमें आनेपर वरका पता न लगा।

घर फूटे गँवार लूटे

पुण्य-सलिला सरयूके दाहिने किनारेपर 'वसन्तपुर' नामकी एक सुन्दर वस्ती है। यहाँपर सरयू कई शाखाओंमें विभक्त हो बहती है। जिस शाखाके किनारेपर यह ग्राम अवस्थित है, उसके और उससे उत्तरवाली दूसरी शाखाके बीच एक बहुत बड़ा भू-भाग है, जहाँ घास-फूस फैला है। सूअर, हरिण आदि वन्य पशु भी अधिकतासे रहते हैं। गाँवमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और अहीर बहुसंख्यामें रहते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय तो गाँवके आस-पासकी थोड़ी-सी ज़मीन जोतकर या कलकत्ता आदि शहरोंमें बाहर जाकर ही कालक्षेप कर रहे हैं; परन्तु अशिक्षित पशु-स्वभाव अहीर उक्त वन्य पशुओंसे भरे जङ्गलोंमें ही गाय-भैंसें पाल, कुछ ज़मीन जोत, जीवन-यापन करते हैं। वहीं कुछ झोपड़ियाँ भी बना ली हैं। परन्तु जब उनकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, तो रातमें इस पार आ, लूट-पाट करते या किसी लक्ष्मीके लाड़लेका घर ढूँढ़ते हैं। गाँवमें क्षत्रियोंकी प्रधानता बहुत दिनोंसे चली आयी है। गाँवका ठेका उन्हींके हाथमें पहले था, वे ही तहसील-वसूल किया करते थे, इसीसे गाँवमें इनका रोब-दाब भी बहुत था। अहीर बहुसंख्यक एवं शारीरिक-शक्ति-सम्पन्न होते

हुए भी बाबू लोगोंकी अधीनतामें रहते, उनके हुक्म बमूजिब चलते तथा बेगार दिया करते थे। बाबू लोगोंके घर जब कभी कोई शादी-वादी होती, बाबू लोग बराबर ही रुपयेमें ६ सेर घी लेते थे। जबसे सरयूकी विशेष कृपासे गाँवकी ज़मीन शिकस्त हो गयी, बाबू लोगोंका ज़माना घिसका। पर ज़मानेके साथ-साथ बाबू लोगोंका दिल नहीं बदला। वही आन-बान-शान रही। बल्कि अपनी जाति-बिरादरी या गाँवके समानाधिकारी उच्च वर्णके लोगोंसे पारस्परिक वैर-भाव व वैमनस्य बढ़ जाने, शादी-आदि उत्सवोंपर पुरानी परिपाटीके अनुसार पानीकी तरह रुपया बहाने; और अदालतके चसकेके वशीभूत हो वकील-मुख़्तारोंका दरवाज़ा खटखटानेके कारण इनकी अवस्था न केवल शोचनीय बल्कि दयनीय हो गयी। यहाँतक कि फ़ाक़ाकशीकी भी नौबत आ गयी। उधर अहीरोंने भी गाँवमें अपना गुज़ारा न होते देख, उस जङ्गलमें रह, पूर्वोक्त रीतिसे जीवन-निर्वाह करनेका निश्चय किया।

अब बाबू लोग इस पार और अहीर उस पार रहते हैं। कभी-कभी गाँवमें अपनी पुरानी झोपड़ियाँ देखने चले आते हैं। हाँ, रातमें—विशेषकर कृष्णपक्षकी काली रातमें—बाबू लोगोंके घरकी तलाशी लेने (चोरी करने) प्रायः दो-चार दिनपर अवश्य आते हैं। दिनमें बाबू लोगोंसे मुलाक़ात होनेपर हाथ उठाकर और रातको उनके घरोंकी तलाशी लेते समय लाठीसे सलाम-बन्दगी करते हैं। गाँवमें दो पक्ष हैं। अहीर कभी इस ओर, कभी उस ओर—

जिधर मतलब बनते देखते हैं, उधर ही हो उसकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं।

२

देवीदयाल और जयदयाल चचा-भतीजे हैं। कुछ दिनोंसे अलग-अलग रहते हैं। आपसमें सदा ही खींचातानी रहती है। ये दोनों ही गाँवके मुखिया हैं। थानेदार-साहिब जब आते हैं इन्हींके दरवाज़े उतरते हैं। वे भी वसन्तपुरके बाबू लोगोंकी रग-रगको पहचानते हैं। बाबुओंके पारस्परिक वैमनस्यसे उनकी पाँचों ही घीमें रहती हैं। आजकल अहीरोंका मेठ बेचू है। इसके सात लड़के और एक दर्जन नाती हैं। सब-के-सब मोटे-मुस्टण्डे हैं; और मोटे-मोटे डण्डे या तीखे बर्छे कन्धेपर रखकर घरसे निकलते हैं। बेचू कुछ दिनों पहले तो देवीदयालके द्वारपर बैठता-उठता था, किन्तु आजकल भाँग-बूटी जयदयालके द्वारपर ही छनती है। बहादुर और लड्डू आजकल जयदयालके सलाह-कार हैं, और ये उक्त चचा-भतीजेकी द्वेषाग्निको बढ़ानेमें ईंधनका काम कर रहे हैं। जिस ओर बेचू रहता है उसी ओर दारोग़ा-साहिबकी नज़रे-अनायत भी रहती है। कारण तो पाठक समझते ही होंगे—वह यह कि थानेदार-साहिब जब आते बेचू भैंसके औटे दूध या दहीका मटका ला हाज़िर करता, और थानेदार-साहिब मीठी-मोटी मलाई उतार-उतार सारा-का-सारा दही या दूध सरसे भूखे-प्यासे बैलकी तरह साफ़ कर जाते। हाथ धोनेपर भी चिक-नाहट दूर नहीं होती तो मूँछोंपर फेर देते। ऐसा ताज़ा दही न तो

ठिठुरते, अपने खेतके किसी कोनेमें छिपकर बैठे फ़सलकी रखवाली करते हैं। रातमें छिपकर इसलिये रहते हैं कि कहीं विपक्षी दल रातमें ही आ उनकी ख़ातिरदारी न करे। इधर लड्डू और बहादुरकी सलाहसे जयदयालने देवीदयालके ८ बीघे खेतका जिन्सवार अपने नाम करा लिया है। देवीदयालने जिस खेतको कोड़ा, जोता, बोया; धूपमें चोटीसे एड़ीतक पसीना बहाके, वर्षा और हवाके झोंके-झञ्झावात और कठोर सर्दीसे ठिठुर-ठिठुरके जिसके लिए घोर परिश्रम किया, जिसकी आशापर लड़के-वाले प्रसन्न हैं, जिस खेतके गेहूपर होली मनायी जाने-वाली है, उसी खेतकी फ़सलपर शनिश्वरी दृष्टि लगाये बेचू और लड्डू बैठे हैं। इधर देवीदयालने गाँवके चमारोंको कल खेत काटनेके लिए आज शाम-ही-से कह दिया है, उधर यह ख़बर पाकर जयदयालने भी अपने आदमियोंसे अपने खेतके बहाने उक्त खेत काटने चलनेके लिये कह रखा है। दोनों दल कल सवेरे खेत काटनेके लिये तैयार हैं।

४

देवीदयालको अभीतक यह ख़बर नहीं कि कल उनके खेतपर छापा पड़नेवाला है। विपक्षी दल पूर्ण रूपसे सचेष्ट है। बेचू नाती-पूत-समेत जयदयालके साथ चलनेके लिए तैयार है। लड्डूने ४ बजे रातको ही थाने जा एक रिपोर्ट देनेकी सलाह जयदयालको दी। अन्तमें लड्डू ही थाना भेजा गया। थानेमें जा उसने रिपोर्ट कर दी कि खेत जयदयालने बोया है, उन्हींके

नाम जिन्सवार भी है। ज़बरदस्ती देवीदयाल आज काटने जा रहा है। हुज़ूर चलें,नहीं बलवा हो जानेका अन्देशा है। थानेदार-साहिब परिस्थितिसे परिचित तो थे ही, उन्होंने कहा—"चलो, हम आते हैं, कोई परवा नहीं, जो होगा सो देख लेंगे। मजिस्ट्रेटके हाथसे तुमको छीन लायेंगे, यहाँकी क्या बात है।" लङ्गड़का मन और बढ़ा। मन-ही-मन कहते हुए चला—"दारोगा-साहिब पीठपर बड़ले बाड़े, पटवारी हाथेमें बा, चलिके बेचुवाके ललकार दीं, सबके पिटपिटाके छोड़ि देला।"

५

सवेरे ६ बजे दोनों दलोंके आदमी खेतपर पहुंचे। देवीदयाल दङ्ग रह गये। जयदयालने कहा—"हमारे नाम जिन्सवार है, खेत हम काटेंगे।" देवीदयालको कुछ करते नहीं बनता। हटते नहीं तो प्राण जाते हैं, हटते हैं तो सालभरकी कमाई जाती है। अन्तमें जीव-जीविकाको बराबर समझ लड़नेका ही क़सद किया। इनके मददगार केवल १५ आदमी थे, और इधर क़रीब ५० आदमी जय-दयाल, बहादुर, बेचू ख़ान्दान-समेत। लेकिन एक बात ध्यानमें रखने लायक़ है कि बेचू और बहादुर दोनों दलोंको अपना दुश्मन समझते थे। इन लोगोंका काम लड़ा देना-मात्र था। अपनी जानपर लड़ना इनका काम नहीं। दोनों ओरके जवान पैंतरे बदलने लगे। देवीदयाल पलटनके सिपाही रह चुके थे, शरीरसे बहुत मज़बूत थे; परन्तु अपना पक्ष कमज़ोर देखकर सशङ्कित थे। विपक्षी दल प्रबल है, सबके मुँहसे बात भी एक ही

निकलती है,पर सब-के-सब अपने दाव-पेंचमें लगे हैं, हृदय सबका भिन्न है। दोनों दलोंकी मुठभेड़ होनेहीवाली थी कि इसी बीचमें लड्डू भी आ धमका। जयदयालने उसे देखते ही चिल्लाकर पूछा—"दारोगा-साहिब आते हैं कि नहीं?" लड्डूने हाँफते हुए कहा—"अभी आवते बाड़े।" दोनों दलके लोग कुछ डर-से गये! दोनों ही दारोगाजीकी इन्तज़ारी करने लगे, और कड़क-कड़ककर बहस-मुबाहसा होने लगा। दारोगाजीके घोड़ेकी टापकी आहटका पता नहीं लगता। लगे भी तो कैसे? दारोगाजी तो सोचते थे—"आज अभी चलकर क्या करूँगा, जब आज वहाँ लाठी बजेगी तो अपने आप कोई-न-कोई दल मेरा दरवाज़ा खटखटायेगा ही, फिर रुपये भी मज़ेमें ठनठनायेंगे।" बस, क्या था, बहस बढ़ते-बढ़ते हाथ भी बढ़ने लगे। लाठी-पर-लाठी पड़ने लगी। जितने आदमी वहाँ एकत्रित थे, उनमें देवीदयाल सबसे बली था—अन्धाधुन्ध लाठी चलाने लगा। देबू-बहादुर स्वयं आगे नहीं बढ़ते थे; परन्तु "वाह पट्ठे, वाह! वाह, मार लो" आदि वाक्य चिल्ला-चिल्लाकर कहते जाते थे। अपने स्थानसे टस-से-मस नहीं होते थे; परन्तु पाँव जहाँ-के-तहाँ पटकते जाते थे। केवल जयदयाल आगे बढ़े, और उनके घरवाले भी साथ ही। बेचूकी कज़ाकी हवा हो गयी, और बहादुरकी बहादुरीका भी पता न चला, कहाँ गयी। अन्तमें दोनों दल दारोगा-साहिबके दरबारमें हाज़िर हुए और अपनी-अपनी रिपोर्ट दी। मर-मोलाई होने लगी। घायल अस्पताल पहुँचाये गये। डाक्टर घायल

पार्टीसे कहता—"ज़ख्म ख़फ़ीफ़ है। रुपये दो, तो ज़ख्म शदीद लिख दूँ। ऐसी रिपोर्ट लिख दूँ कि वे सब-के-सब बड़े घरके मिहमान हो पसेरीभरकी चक्की चलावें।" दूसरी पार्टी जब मिलती तो कहता—"ज़ख्म शदीद है। बचना मुश्किल है। फिर भी कोई हर्ज नहीं, मेरी रिपोर्टपर सारा मामला हवा हो जायगा। मगर भाई, जानते ही हो, अक्षत-नैवेद्यसे मुँह मीठा किये बिना तो देवी-देवता भी......।"

अपना-अपना मतलब दोनों दल ख़ूब समझते थे। दोनों देवताओंको प्रसन्न करना कोई साधारण बात न थी। कम-से-कम एक हज़ारका ख़र्च था। फिर भी दोनों दलोंने यथा-साध्य प्रयत्न कर दोनों देवताओंको प्रसन्न करनेकी व्यर्थ चेष्टा की। पाठक इनकी दरिद्रावस्थाके सम्बन्धमें दो-एक बातें आरम्भमें पढ़ ही चुके हैं। रुपयेकी खोजमें पगड़ी बाँध-बाँधके दोनों दलके लोग जाते, और जो लोग कभी अपने दरवाज़ेपर हज़ार कोशिशें-सिफारिशें कर बुलानेपर उन्हें उपस्थित पा अपने दरवाज़ेकी शोभा और अपना सौभाग्य समझते, उन्हींके दरवाज़ेपर नाक रगड़ते और उनकी ख़ुशामदें करते नहीं थकते। ख़ुशामदी भी अब उन्हें देख मुँह फेर लेते हैं। दस्तावेज़पर एकका डेढ़ लिखा, जोड़ा रुपया सैकड़ा माहवारी सूदपर रुपये देते हैं, और सलामी अलग लेते हैं। बाप-दादेकी कमाई ज़मीनको बेचकर ये नासमझ रुपये लाते हैं। किसी प्रकार रुपयेका प्रबन्ध कर एक पक्षने डाक्टर-साहिबकी, दूसरेने दारोगा-साहिबकी ख़ातिरदारी

की। मामला चला और तारीख़-पर-तारीख़ पड़ने लगी। मामले दोनों ओरसे दायर थे, और दोनों दलोंके बच्चे-बच्चका नाम उनमें आ गया था। देवीदयालके खेतकी फ़सल सूखकर नष्ट-भ्रष्ट हो रही है, और जयदयाल, बहादुर, लड्डू, आदिकी फ़सल काटकर पास-ही-पास खलिहानमें रखी गयी है, जिससे रखवालीमें सुभीता हो।

६

आज मामलेकी पहली पेशी है। होलीके दो दिन और रह गये हैं। दोनों दलोंके मुख्य-मुख्य आदमी अदालतमें हाज़िर होने गये हैं। बेचू जयदयालका गवाह है। अभी उसकी तलबी नहीं हुई। एक पक्षने मुहलत ले ली, तारीख़ दूसरी पड़ गयी। परन्तु दोनों पक्ष काग़ज़ बूझने-समझने वहीं रह गये। इधर दूसरे दिन ९ बजे रातको होलिका-दहनका मुहूर्त था। दोनों दलोंके ग्रामी अलग-अलग इकट्ठे हुए, होलिका-दहनकी विधि समाप्त हुई। ब्राह्मण-क्षत्रिय ढोल-झाल ले झूम-झूम गाने लगे, और अहीर आदि निम्नश्रेणीके लोग बड़े-बड़े धधकते लुकार ले भाँजते भाँजते दूर निकल गये। इस प्रकार तमाशेमें ही दो बज गये। सब लोग अपने घर लौटे। थके तो थे ही, रात काफ़ी बीत चुकी थी, ग्राम-वासी प्रायः सब-के-सब घोर निद्रामें निमग्न हो गये। इधर बेचूने सोचा—"भले बाबू लोग ना आइलें। होली त जरल बाकी अभी अच्छी तरह ना। बाबू लोगके हई टाल! बाप रे बाप! ई लोग रहे ना दी। रोज बेगारिये खटत खटत जीव चलि जाई। रे कमलुआ!

पार्टीसे कहता—"ज़ख्म ख़फ़ीफ़ है। रुपये दो, तो ज़ख्म शदीद लिख दूँ। ऐसी रिपोर्ट लिख दूँ कि वे सब-के-सब बड़े घरके मिहमान हो पसेरीभरकी चक्की चलावें।" दूसरी पार्टी जब मिलती तो कहता—"ज़ख्म शदीद है। बचना मुश्किल है। फिर भी कोई हर्ज नहीं, मेरी रिपोर्टपर सारा मामला हवा हो जायगा। मगर भाई, जानते ही हो, अक्षत-नैवेद्यसे मुँह मीठा किये बिना तो देवी-देवता भी......।"

अपना-अपना मतलब दोनों दल ख़ूब समझते थे। दोनों देवताओंको प्रसन्न करना कोई साधारण बात न थी। कम-से-कम एक हज़ारका ख़र्च था। फिर भी दोनों दलोंने यथा-साध्य प्रयत्न कर दोनों देवताओंको प्रसन्न करनेकी व्यर्थ चेष्टा की। पाठक इनकी दरिद्रावस्थाके सम्बन्धमें दो-एक बातें आरम्भमें पढ़ ही चुके हैं। रुपयेकी खोजमें पगड़ी बाँध-बाँधके दोनों दलके लोग जाते, और जो लोग कभी अपने दरवाज़ेपर हज़ार कोशिशें-सिफारिशें कर बुलानेपर उन्हें उपस्थित पा अपने दरवाज़ेकी शोभा और अपना सौभाग्य समझते, उन्हींके दरवाज़ेपर नाक रगड़ते और उनकी ख़ुशामदें करते नहीं थकते। ख़ुशामदी भी अब उन्हें देख मुँह फेर लेते हैं। दस्तावेज़पर एकका डेढ़ लिखा, जोड़ा रुपया सैकड़ा माहवारी सूदपर रुपये देते हैं, और सलामी अलग लेते हैं। बाप-दादेकी कमाई ज़मीनको बेचकर ये नासमझ रुपये लाते हैं। किसी प्रकार रुपयेका प्रबन्ध कर एक पक्षने डाक्टर-साहिबकी, दूसरेने दारोगा-साहिबकी ख़ातिरदारी

की। मामला चला और तारीख़-पर-तारीख़ पड़ने लगी। मामले दोनों ओरसे दायर थे,और दोनों दलोंके बच्चे-बच्चेका नाम उनमें आ गया था। देवीदयालके खेतकी फ़सल सूखकर नष्ट-भ्रष्ट हो रही है, और जयदयाल, बहादुर, लड्डू, आदिकी फ़सल काटकर पास-ही-पास खलिहानमें रखी गयी है, जिससे रखवालीमें सुभीता हो।

६

आज मामलेकी पहली पेशी है। होलीके दो दिन और रह गये हैं। दोनों दलोंके मुख्य-मुख्य आदमी अदालतमें हाज़िर होने गये हैं। बेचू जयदयालका गवाह है। अभी उसकी तलबी नहीं हुई। एक पक्षने मुहलत ले ली, तारीख़ दूसरी पड़ गयी। परन्तु दोनों पक्ष काग़ज़ बूझने-समझने वहीं रह गये। इधर दूसरे दिन ९ बजे रातको होलिका-दहनका मुहूर्त था। दोनों दलोंके हामी अलग-अलग इकट्ठे हुए, होलिका-दहनकी विधि समाप्त हुई। ब्राह्मण-क्षत्रिय ढोल-झाल ले झूम-झूम गाने लगे, और अहीर आदि निम्नश्रेणीके लोग बड़े-बड़े धधकते लुकार ले भाँजते भाँजते दूर निकल गये। इस प्रकार तमाशेमें ही दो बज गये। सब लोग अपने घर लौटे। थके तो थे ही, रात काफ़ी बीत चुकी थी, ग्रामवासी प्रायः सब-के-सब घोर निद्रामें निमग्न हो गये। इधर बेचूने सोचा—“भले बाबू लोग ना आइलं। होली त जरल बाकी अभी अच्छी तरह ना। बाबू लोगके हई टाल! बाप रे बाप! ई लोग रहे ना दी। रोज बेगारिये खटत खटत जीव चलि जाई। रे कमलुआ!

देखु, सब खर्राटा मारतबा, एक दियासलाईकी बत्तीके जरूरत बाटे। बत्ती लेके गाँवका बाहरे बाहर सरजूके किनार धइले जो, भटसे आगि धराइके फुरतीसे ओही ओही भागि आउ। सब लोग जानते बा जे बाबू लोगका आपुसमें बैर बा। हमनीका भी कहि देबि जे देवीदयालके लड़िका आग लगा दीहले स। नाहीं त होई कि होलीके लुकारीकी आग उड़कर हवामें चलि गइल होई, आग सुनुगि गइल होई। बस, उठु, देर मत करु। जबले बाबू लोग एह तरे सर ना कइल जाई तबले हमनीके दरोगाजीसे पिण्ड ना छूटी। दहिए देत देत आदमी तबाह हो जाई।"

७

बेचू जयदयालके दरवाज़ेपर जाकर लेटे-लेटे हवा-पानी लेता रहा। भट कमलूने अपने घरसे दियासलाई ली, और सिरपर गमछा बांधे, हाथमें तलवार लिये, बम्बइया चादरसे सारा बदन ढाँके चुपके-चुपके लपक कर चला। बहादुर और लङ्गड़के लड़के सोये खर्राटे भर रहे थे। कमलू भी इन कामोंमें कामिल था। काम भी तो यही था। भट दियासलाईकी एक बत्ती जलायी और अन्नसे लदी फ़सलके ढेरमें उसे फेंक भाग निकला। तुरन्त लाल-लाल धधकती लौएं निकलने लगीं। कमलू घर आया और पाँवमें पट्टी बाँधकर सो गया। इधर आधा ग़ल्ला जल जानेपर लोगोंकी नींद टूटी—हाहाकार मच गया। किन्तु हो क्या सकता था, बात-की-बातमें सारा गाँज जलकर खाक हो गया। बेचू भी

घर फूटे गवार लूटे

झट दियासलाईकी एक वत्ती जलाई. और अन्नसे लदी फसलके एमें उसे फेंक भाग निकला। [पृष्ठ ११४]

घटनास्थलपर मौजूद था। हाय-हाय करता था, परन्तु अपनी मनोकामना फलवती होती देख भीतरसे बड़ा प्रसन्न था।

आज होलीका अन्तिम दिन है। अदालतवाले बाबू लोग भी सवेरेकी गाड़ीसे घर लौट आये। यह ख़बर सुन सबका माथा ठनका—"एक विपत्तिसे छुटकारा हुआ नहीं, तबतक यह दूसरी विपत्ति आ पड़ी। लड़कोंका मुँह बन्द हुआ! हाय अब काम कैसे चलेगा! दुश्मनको और कोई रास्ता न मिला तो आग लगा दो!" सब लोग योंही शोक मनाने लगे। सबको विश्वास हो गया था कि देवीदयालके लड़कोंने ही यह काम किया है। बेचूने रो-रोके बाबुओंसे बातें कीं, और शोक-सूचक शब्दोंद्वारा हृदयके भावोंको छिपाके सहानुभूति प्रकट की। यदि सुबहसे कमलूका कोई नाम भी लेता तो कहता—"भाई कमलुआके नाम काहेके लेत बाड़,ऊ त कई दिनसे पाँवके घावकी पीड़ासे बेचैन बाटे। ऊठल-बइठल ओकर भारी भइल बाटे।" अब तो और भी बाबुओंका पारस्परिक वैमनस्य बढ़ा, और तैयारी होने लगी कि देवीदयालका सारा घर जला दिया जाय।

८

यह वैमनस्य विस्फोटक विषैले गैसकी तरह दिन-दिन बढ़ता ही गया। बहादुर, लङ्गड़ और बेचू इसे अधिकतर व्यापक और प्राणघातक बनानेमें पवनका काम करते गये। देवीदयालके खेतका अन्न उनके खेतमें ही रह गया। जयदयाल, लङ्गड़ और बहादुरकी फ़सल बेचूके पेटमें धधकती द्वेषाग्निमें भस्म हो गयी। जो होनी

थी सो हो ली, और होली भी हो ली! सालभरकी सारी कमाई और श्रम व्यर्थ गया। कहाँ तो बाबू लोग सालभर सुख-चैनसे खाते-पीते, और कहाँ होलीमें ही यह सङ्कट। उनके लड़के एक टुकड़ा रोटीके लिए तरसते—नहीं, नहीं—भूखसे रोते और बाबुओंकी आँखोंसे अश्रुधारा नहीं सूखती थी। इतना होनेपर भी उनके मनमें सद्भावनाका उदय नहीं होता था। वे यह नहीं सोचते कि हम यह सब क्या कर रहे हैं। अपने ही हाँथों अपना संहार कर रहे हैं, और अपनी बची-खुची आबरू भी गँवा रहे हैं। वे आँखके अन्धे यह नहीं देखते कि हमारी बगलमें, हमारे साथ ही, हमारा दुश्मन है। उन्हें यह ज्ञान नहीं कि हम एक ही मांसके टुकड़े हैं, एक ही खून हमारी नसोंमें प्रवाहित है, हमारा वह है और हम उसके हैं। जो कोई कह देता है, वही कान खोल सुनते और आँखें बन्द कर बिना विचारे सब मान लेते हैं। आपसकी तिलभरकी ग़लतीको ताड़ बना अपने खूनके विरुद्ध हाथ उठाते हैं। भाईकी ज़रा-सी भूलको माफ़ नहीं करते, और और अदालतोंमें बाप-दादेकी ज़मीन बेच जाते हैं; और अपने लड़कोंके भूखे मुँह देख ज़रा तरस नहीं खाते। अपने बड़े-बूढ़ोंके सामने नहीं झुकते, और मुख़्तारों और तुर्क-अमलोंके पाँवों पड़ते हैं। शान्तिपूर्वक अपने घरोंमें नहीं बैठते, और पग-पगपर ठोकर खाते हैं। अब उस बढ़ते हुए वैमनस्यने जो विकट रूप धारण किया, उसका वीभत्स परिणाम पाठक फिर कभी पढ़ेंगे।

रूप *

आज भी मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय मेरी अवस्था केवल ५ वर्षकी थी। माता-पिता आदि आत्मीय स्वजनोंने मुझे अपने मनोविनोदकी सामग्री बना लिया था। वे समय-असमयका बिलकुल विचार नहीं करते थे। मुझ खेलती हुईको मेरे साथियोंके निकटसे पकड़ लाते, और किसी एक अपरिचित सज्जनके सम्मुख खड़ी कर देते। आगन्तुक सज्जन टकटकी लगा, प्रफुल्लवदन न जाने मुझमें क्या देखते—मुझे देखते ही मुग्ध हो जाते। मेरे सम्बन्धमें कितनी समालोचनाएँ होतीं। कितनी तुलनाएँ करनेके पश्चात् मेरे श्रेष्ठत्वको स्वीकार कर एवं प्रेम-चुम्बन कर मुझे गोदमें ले लेते। मैं मानों अपने गृहकी लक्ष्मी थी—माता-पिताके गर्वकी एक सामग्री थी। उस समय मैं बिलकुल नहीं समझती थी कि वे लोग मेरे साथ ऐसा क्यों करते हैं। मैं कभी तो उनके व्यवहारपर हँसती और आनन्दानुभव करती थी—कभी रुष्ट होती थी। मैं बहुत देरमें समझी कि इस प्रकार मेरे लाड़-प्यार और आदर-दुलारका कारण मेरे मुग्धकारी कमल-नयन, असाधारण रूप-लावण्य और सौन्दर्य ही है। विधाताने मुझे रूप दिया है—केवल दिया ही नहीं है, मैं समझती

---

* बाबू फकीरचन्द्र चटर्जीके एक लेखके आधारपर लिखित।

हू, लीलामय भगवानने मेरे शरीरमें अपनी सौन्दर्य-निधि भरकर, रूपकी लहरें उमड़ा, अपने लीला-चातुर्य और वर्ण-वैचित्र्य-को प्रस्फुटित कर मानव-जातिकी रूप-पिपासाको और बढ़ा दिया है।

मेरी अवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी, मेरे यौवनकी तरङ्ग ज्यों-ज्यों तीव्र वेग धारण करती गयी, त्यों-त्यों मेरे रूप-पुष्पका रङ्ग भी निराला रूप धारण करता गया। मनुष्योंकी वासनामयी दृष्टि मुझपर पड़ने लगी। लोग चारों ओर मेरे रूपकी चर्चा करते थे। सबके ध्यानपर यह बात चढ़ गयी कि मैं विवाहावस्थाको प्राप्त हो गयी हूँ। पिताजीके निकट कई सज्जनोंने मेरे रूपको ख़रीदनेका प्रस्ताव भेजा। बहुतसे सज्जन मेरे रूपका निरीक्षण करने आते—मैं कठपुतलीकी तरह उनके सम्मुख खड़ी हो जाती। वे लोग मुझे देखकर कोई प्रश्न नहीं करते, केवल मेरे रूपकी मनो-हरतासे मोहित होकर बोलते—"ऐसा मधुर रूप कभी नहीं देखा!" तत्पश्चात् पिताजीके साथ क्या बातचीत होती, मुझे मालूम नहीं। मेरे रूपके ग्राहक प्रतिदिन आते थे, तथापि माँ अभिमानपूर्वक बोलती—"कन्या पूर्णवयस्का हो गयी है, अब अधिक दिनोंतक अविवाहित नहीं रखी जा सकती। कहीं वर पक्का कर लीजिये।" मेरे रूपका प्रभाव और उज्ज्वलता माँको शङ्कित करती थी, क्योंकि जो कोई मुझे एक बार देखता, वही विस्मय-विमुग्ध दृष्टिद्वारा मेरे रूपको लूट लेना चाहता। विधाताने मुझे रूप तो दिया था, किन्तु उसके विकासके लिये उपयुक्त स्थान

क्यों नहीं दिया, मैं नहीं जानती। पीछे समझी, विधाताकी विचित्र लीला ही इसका कारण है। उन्हें कितनोंने निर्गुण-अपरूप— कहकर बोधित किया है; क्योंकि उन्हें स-रूप निर्देश करके क्षुद्र मानव उनके रूपका चित्र-चित्रण करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकते। इसीसे मालूम होता है कि विधाताने रूपको लेकर इतना ऊधम मचा रखा है। समस्त रूप-भाण्डारको विश्वमें बाँटकर स्वयं अरूप हो रूप-सागरमें निमग्न हैं। इसीसे मालूम होता है कि उन्होंने अनन्त होकर सान्त संसारमें, दुःख-दैन्य, हास्य-विषाद, प्रीति-स्नेह, पुण्य-पवित्रता, आलोक-अन्धकार सबमें ही अपरूप रूपमें अपनेको विकसित किया है। इसीसे मालूम होता है कि पर्वत निर्झरसे, नदी-तरङ्गसे, मेघमालासे, फल-फूलसे, प्रकृतिकी तहसे, एवं अणु-परमाणुसे अपरूप रूपमें प्रस्फुटित होकर विश्व-मानवको पुकार पुकारकर बोलते हैं, "आओ, आओ, दौड़कर आओ, आज मेरा रूप देख जाओ; एकबार आँख खोलकर मेरे इस विश्वको तृप्त करनेवाले रूपको जी भरकर देखो, अनुभव करो। अनुभव करनेके साथ-साथ यह भी समझते जाओगे कि इस रूपके भीतर कैसा अपूर्व रङ्ग भरा रहता है! केवल रूप होनेसे इसकी नवीनता नष्ट हो जाती। रूपको नवीन बनाये रखनेवाला उसका रङ्ग ही है। रङ्ग बिना केवल रूप गृहहीन गृहस्थ या जलहीन सरिताके समान है। हमलोग पहले रूप देखकर ही मुग्ध होते हैं, किन्तु विचार-पूर्वक देखनेसे पता चलता है कि जो रूप हम देखते हैं वह तो बाह्य है, रूपका प्राण तो उसका रङ्ग ही है।

यह प्राणहीन रूप कुछ दिनके लिये हमलोगोंको आकृष्ट कर सकता है—थोड़े कालमें ही इस रूपका नशा उतर जाता है—कारण, जब मनुष्य रूपके बीचमें प्राणको खोजने लगता है और जब उसके रङ्गहीन प्राणको नहीं खोज पाता, तब फटे-पुराने त्यक्त वस्त्रकी भाँति वह प्राणहीन रूपका परित्याग कर सत्य रूपका पुनः अनुसन्धान करने लगता है। विधाताने विश्वके चारों ओर अपना रूप फैला रखा है। जिसे प्राण हैं, हृदय हैं, ज्ञान हैं, वह केवल मनुष्योंमें ही रूपका अन्वेषण नहीं करता, वह दरिद्रकी भाँति भिक्षाकी झोली लेकर, मनुष्यके द्वार-द्वारपर माथा टेककर, रूपकी भिक्षा-याचना नहीं करता। जहाँ प्रकृतिमें उनका रूप विलीन हो गया है, वहींसे वह रूपका अनुभव कर एवं उसी रूपमें विश्वनियन्ताकी अनन्त रङ्ग-राशिको देखकर आत्मविस्मृत हो जाता है।

पिताजीने एक ऐश्वर्य्यवान व्यक्तिके ऐश्वर्य्य-रूपको देखकर उसके पुत्रके हाथ मेरे रूपके बोझेको सँभला दिया। पिताने किसी पहलूपर पूर्णतया विचार न किया। ऐश्वर्य्यकी वेदीपर मेरे असाधारण रूपका वलिदान कर दिया। वे लोग कुछ दिनतक मेरे विमुग्धकारी रूपकी चर्चा कर अपनी यश-वृद्धि करने लगे। मेरे पूर्णवयस्का हो जानेपर भी नवागत आत्मीयजनोंके सम्मुख निमन्त्रण, उत्सव आदि अवसरोंपर सब स्थानमें ही मेरा घूँघट खोल मेरे रूपकी परीक्षा होती। मैं लज्जासे गड़ी जाती थी। मैं अपने रूपके कारण, दुःख अनुभव करने लगी। मेरे रूपमें जो तीव्र

विष था, उसकी ज्वाला मानों मेरे सर्वाङ्गमें व्याप्त होने लगी। जो मेरे पति थे, वे कुछ दिनतक तो रूपके नशेमें मस्त हो डूबे रहे। मन-भर रूपकी सेवा और उपभोग कर चुकनेके पश्चात् उनके लिये मेरा रूप पुराना हो गया, अतः वे अब नये रूपकी खोज करने लगे। अब मेरी अवहेलना होने लगी। मेरा असामान्य रूप भोगरूपी विषाग्निके मुखमें पड़कर चूसे हुए पीले आमकी तरह फीका पड़ गया। उस समय मैं नहीं समझ सकी कि कैसे ऐसा हो गया। ऐसा होनेका कारण क्या? किस अपराधसे रुष्ट हो विधाता मेरे प्रति ऐसे निष्ठुर हो गये। उन्होंने रूप दिया था, और उसकी मर्यादा भी उन्हींने भङ्ग करायी। रूप-रङ्ग बिना अकेला कभी रह नहीं सकता। रङ्गयुक्त रूपसे ही विश्व चल रहा है। मुझमें वही रङ्ग नहीं था। इसीलिये वह रूप थोड़े हो दिनोंमें चूर्ण हो गया। रूप बाह्य वस्तु है, उसकी नूतनता भङ्ग हो सकती है; किन्तु उसका रङ्ग स्थायी, चिरनवीन एवं चिरविकसित आनन्द-मूर्त्ति है। हृदयकी प्रत्येक तन्त्रीमें आनन्दकी अजस्रधाराके बीच,प्रकृतिके रूपके वक्षस्थलपर,लीलामयके रूपके स्रोतमें जो रङ्ग उद्भासित हो रहता है, उसीके चरणोंके सन्निकट विश्व-मानवकी विद्या, बुद्धि, ज्ञान, चिन्ता, आलोचना, आवृत्ति, आशा, आकांक्षा नित्य आनन्दमें लोटी पड़ती है। तभी मेरे मनमें हुआ कि रूपके साथ रङ्ग-विधाताका अपूर्व दान है। 'रूपको खोकर जिस दिन मैंने रङ्गका पता पाया,उस दिन मेरे हृदयमें विमल आनन्द-स्रोत प्रवाहित हुआ। रङ्गके नये आलोकको प्राप्त कर मैं फिर नूतन हो उठी।

रङ्गयुक्त मेरा रूप अब और भी उज्ज्वल हो गया। रङ्गने आकर मेरे रूपकी प्राण-प्रतिष्ठा की, फिर तबसे तो मेरा आदर पुनः बढ़ गया।

महीधर जातिके ब्राह्मण थे, पर ब्राह्मणत्वका उनमें यज्ञोपवीतके अतिरिक्त कोई चिन्ह न था। पूजा-पाठको वे ढकोसला समझते, और शिखाको Pigs tail (सूअरकी पूंछ) के नामसे पुकारते। पुराण उनकी दृष्टिमें कोरे काव्य-ग्रन्थ थे और उसका कथानक निरी कविकी कल्पना। इसीमें वे भी प्रसन्न रहते थे, और उनके हितमित्रोंको भी यही पसन्द था।

महीधरजी बीसवीं सदीके अप-टू-डेट बाबू-साहब थे। बी० ए० पास थे, अंग्रेज़ोंसे जान-पहचान थी, हाकिमोंसे मेल-जोल था। इससे अधिक चाहिये ही क्या? लाख बातकी बात तो यह कि वे घरके धनी थे, अपनी सम्पत्तिके स्वयं अधिकारी थे, "परम स्वतन्त्र न सिरपर कोई" जो मनमें आता करते थे।

महीधरको अशिक्षित स्त्रियोंसे बड़ी घृणा थी। वे नाचना-गाना नहीं जानतीं, सभ्य-समाजमें बहस नहीं कर सकतीं, पतिसे रूठना नहीं जानतीं, उन्हें हाव-भाव दिखलाना—कटाक्षपात करना नहीं आता।

जिसने शेक्सपियर, शेले, स्काट और वर्ड्सवर्थके ग्रन्थोंका रसास्वादन नहीं किया, उसमें मनुष्यता कहांसे आ सकती है? ऐसी गावदीसे शादी करके अपने सिर बला लेना है। इस

सम्बन्धमें वह दाम्पत्य-सुख कहां ? प्रेमका वह अनुपम विकास कहां ?

इन्हीं सब कारणोंसे मिसिरजीने अबतक शादी न की थी। अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी, अप-टू-डेट नारीको ही अपनी हृदयेश्वरी बनाऊंगा, यह उनका दृढ़ निश्चय था। पर, बहुत दिनोंतक प्रतीक्षा करके भी जब मनोकामना पूर्ण न हुई, तो हज़रतने अख़बारोंमें विज्ञापन दे दिया। विज्ञापनमें और शर्तोंके अतिरिक्त एक यह भी शर्त थी कि प्रार्थिनियोंको अपने चित्रके सहित स्वयं आवेदन करना होगा।

विज्ञापन देकर मिसिरजी निश्चिन्त हो गये, और बड़ी उत्सुकताके साथ अपनी इष्ट-सिद्धिकी बाट जोहने लगे।

२

दिन-पर-दिन व्यतीत होते गये, पर अबतक मिसिरजीके पास कोई उपयुक्त आवेदन-पत्र न आया। अपने इस प्रयत्नको भी निष्फल होते देख मिसिरजीके दुःखका ठिकाना न रहा।

एक दिन दोपहरको मिसिरजी अपने कमरेमें बैठे हुए थे। जलता हुआ सिगार हाथमें था, पर चिन्ता-सागरमें ऐसे ग़र्क थे कि सिगारकी ओरसे एकदम बेख़बर हो गये; और वह जल-जलाकर हाथ-ही-में ख़ाक हो गया।

इसी समय नौकर चिट्ठियोंका एक बण्डल दे गया। सब पत्रोंपर सरसरी नज़र डालते हुए मिसिरजीने एक पत्र बड़ी उत्सु-

कतासे खोला। उसे पढ़कर मिसिरजीको प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उनकी सभी कामनाएं मानों आज पूर्ण हो गयीं। पत्र यों था—

डियर मिसिर-बाबू,

आपके विज्ञापनने मेरी सभी इच्छाओंकी पूर्ति कर दी। जिस प्रकार आप एक योग्य दुलहिनकी खोजमें बहुत दिनोंसे हैरान थे, उसी तरह मैं भी एक सुयोग्य पतिकी तलाशमें बहुत दिनोंसे परेशान हूं। पर मालूम होता है, हमलोगोंने अब बड़ी खोजके बाद, मन-चाही मुराद पा ली।

मेरे पिता बैरिस्टर थे। मेरी माताने भी उच्च शिक्षा पायी थी। पर खेद है, वे दोनों इस समय—यह सुखमय दिवस देखनेके लिये उपस्थित नहीं हैं। मैंने भी एक अंग्रेज़-रमणीसे शिक्षा पायी है, और प्राइवेट बी० ए० परीक्षा पास की है।

चित्र भी साथ ही जाता है। आशा-भरे हृदय और उत्सुकतापूर्ण नेत्रोंसे मैं पत्रोत्तरकी राह देखती हूं।

कृपाकांक्षिणी—

मिस प्रतिभा।

पत्र पढ़कर मिसिरजीके आगे एक अपूर्व सुखमय कल्पनाका चित्र टङ्ग गया। वे आनन्दसे विभोर होकर पत्रको बड़ी देरतक पढ़ते रहे।

३

विवाह मिस प्रतिभासे तय हो गया। एक दिन मिसिरजी

जाकर प्रतिभासे ब्याह कर लाये। ब्याहमें ही प्रतिभा ससुराल आयी।

मिसिरजीके दिन आनन्दसे कटने लगे। उन्होंने मानों स्वर्ग पा लिया। प्रतिभाके समान स्त्री पाकर वे अपनेको धन्य समझते थे।

कुछ दिनतक इस प्रेम-नदमें खूब ज़ोरोंकी बाढ़ आयी। पर यह प्रेम चिरस्थायी न हुआ। शीघ्र ही बाढ़का जल बहता गया, और प्रेमका अन्तकाल शनैः-शनैः निकट आने लगा।

मिस प्रतिभा कहा करती, मिसिर-बाबू प्रेम करना नहीं जानते। वे निरे काग़ज़के पुतले या काठके ऊल्लू हैं। मिस प्रतिभाकी यह धारणा कहांतक ठीक थी, यह कहना तो कठिन है; पर इसमें कोई शक नहीं, मिसिर-महोदय प्रेमरूपी शतरञ्जकी चाल चलनेमें एकदम अनाड़ी थे। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे अपनी जानमें कोर-कसर करते थे। वे उसके ऊपर अपने जीवन-को भी विसर्जित कर सकते थे। दिन-रात उन्हें इसीकी फ़िक्र लगी रहती थी कि प्रतिभाको किसी प्रकारका कष्ट न हो—किसी भांति उसका दिल न दुखे। उन सब पदार्थोंका वे पूर्ण संग्रह रखते, जिनकी आवश्यकता प्रतिभाको होती।

प्रतिभाको गहनोंका बड़ा शौक़ था। वह अपने गहनोंसे अधिक किसीको न प्यार करती थी। यद्यपि उसके लोहेके-दो सन्दूक़ जवाहिरात और सोनेके गहनोंसे भरे हुए थे, फिर भी उसे तृप्ति न थी। वह चाहती थी कि गहनोंके लिये मैं पतिसे तकाज़ा करूं;

परन्तु पति-देव कहनेके पहले ही सब वस्तुएं हाज़िर रखते थे। गहने-कपड़ोंके लिये आजतक मिस प्रतिभाको मिसिरजीसे कभी फ़रमाइश करनेका मौक़ा नहीं मिला। परन्तु इन सब बातोंसे प्रतिभाकी धारणा नहीं बदल सकती। प्रणय-चौसरकी चालें कुछ दूसरी ही होती हैं। इसी कारण प्रतिभाकी नज़रोंमें मिसिर-जी वस्त्राभूषण तैयार करनेकी मशीन-भर थे।

पर मिसिरजीको इतनेसे ही सन्तोष था। वे प्रतिभाको गहने-कपड़े देकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। उनका ऐसा ख़याल था कि प्रेमका प्रतिदान नहीं—दान ही उसका प्रतिदान है। अतएव मिसिरजीकी तृप्तिका यही साधन था। कपड़े-लत्तोंसे सजी हुई सुन्दरी प्रतिभाको जब वे देखते, तब उनके आनन्दकी सीमा न रहती।

इसी भांति बहुत दिन बीत गये। प्रतिभाकी ओर सारा ध्यान रहनेके कारण मिसिरजीके व्यापारकी हालत दिन-दिन ख़राब होती गयी। फिर भी प्रतिभाको छोड़ उधर ध्यान देना उन्होंने उचित न समझा।

एक दिन मुनीमने आकर बतलाया कि आज एक पन्द्रह हज़ार रुपयेकी हुण्डी आयी है। उसका भुगतान न करनेसे कम्पनीका दिवाला निकल जायगा। और इधर स्टाकमें रुपयोंका बिलकुल ही अभाव है।

मिसिरजीपर एकाएक वज्रपात-सा हो गया। इतने ही दिनोंमें यह दशा हो जायगी, इसका उन्हें स्वप्नमें भी ध्यान न था।

आज सहसा इस विपत्तिके सामने वे संभल न सके। चित्र-लिखेकी भांति मुनीमकी ओर ताकने लगे। क्या करें, समझमें न आता था। प्रतिभाके गहनोंसे तो कई पन्द्रह हज़ारकी हुण्डियां चुकायी जा सकती हैं, पर उससे मांगे कौन ? जिस चीज़को एक बार दे दिया, उसे फिर किस भांति वापिस मांगें ? मिसिरजीको कोई युक्ति न सूझ पड़ी।

शहर-भरमें मिसिरजीका कारख़ाना सबसे चला-बना था। बाज़ारमें उनकी बड़ी साख थी। वे चाहते तो उनकी बातपर ही पन्द्रह-बीस हज़ार रुपये मिल जाते। जिस किसीको एक रुक्का लिख देते वही रुपये गिन देता। पर वे ऐसा करना न चाहते थे। ऐसा करनेसे इस समय तो काम चल जायगा; पर उनकी वह साख, वह प्रतिष्ठा, जिसे इनके पिताने बड़े कष्टोंसे उपार्जित किया है, मिट्टीमें मिल जायगी। इसी चिन्तामें वे डूबने-उतराने लगे।

बड़ी देरतक सोच-विचारकर उन्होंने प्रतिभासे गहना मांगना ही एक-मात्र उपाय स्थिर किया। सोचा, घरकी बात है, गहने तो फिर शीघ्र ही बनवा दिये जायंगे; पर वह प्रतिष्ठा—वह साख अगर चली गयी, तो उसके फिर प्राप्त होनेकी कोई आशा नहीं।

मिसिरजी अन्दर चले। पर उनके पांव न उठते थे। गहनों-की बात मुंहसे कैसे निकलेगी ? मेरी यह बात सुनकर वह मुझे अपने मनमें कितना नीच, कितना दरिद्र और कितना हेय समझेगी ? आजतक मेरे प्रति उसका जो प्रेम, जो श्रद्धा है, वह

आज मिट्टीमें मिल जायगी। नहीं, मैं कदापि उससे गहनोंकी याचना न करूंगा।

मिसिरजी लौटे तो सही, किन्तु शीघ्र ही उनके ध्यानमें परिस्थितिकी बात आयी, और वे ठिठककर खड़े हो गये। न तो उनसे आगे ही बढ़ा जाता था, और न पीछे ही लौटते बनता था। उस समय उनकी सांप-छछूंदरकी गति हो रही थी।

लाचारी थी। आगे बढ़ना ही पड़ा। किसी भांति वे प्रतिभाके कमरेमें पहुंचे। उस समय वह रेनाल्ड्सका कोई उपन्यास पढ़ रही थी। सोफ़ेपर लेटी हुई थी। लेटे-ही-लेटे उसने मिसिरजीको एक कुर्सीपर बैठनेका इशारा किया। मिसिरजी चुपचाप कुर्सीपर जा बैठे।

एक अध्याय समाप्त कर प्रतिभा मिसिरजीकी ओर मुख़ातिब हुई। उसने पूछा—"आज बेवक़्त कैसे कृपा की?"

मिसिरजीके कलेजेपर सांप लोट गया। इस मधुरभाषिणी कोमल-हृदया सुन्दरीके सामने वे गहनोंकी बात कैसे छेड़ें? बड़ी देरतक वे यही सोचते रहे। अन्तमें उन्होंने गहनोंकी बात चलायी। पर ठीक उसी भांति जिस भांति अपराधी बालक अपने अपराधकी बात मातासे कहता है, जिस प्रकार चोर न्यायाधीशके सामने अपनी चोरीकी बात कहता है, और जिस प्रकार झूठा अपनी झूठी बातको सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट करनेके लिये बाध्य होता है।

प्रतिभाका उत्तर सुनकर मिसिरजी सन्न हो गये। रूखा और
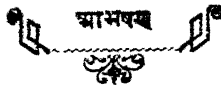
सूखा उत्तर पानेकी उन्हें स्वप्नमें भी आशा न थी। वे उठकर सीधे बैठकमें चले आये।

उसी दिन बाज़ारसे रुपयोंका प्रबन्ध कर दिया गया। हुण्डीका भुगतान हो गया, और मिसिरजी भी कुछ रुपयोंके प्रबन्धके लिये उसी दिन काशी चले गये।

४

प्रतिभाने मिसिरजीका काशी-गमन सुना, तो इसका उल्टा ही अर्थ लगाया। उसका एक प्रिय भृत्य शिवचरण था। उसने उसीको मन्त्रणाके लिये बुलाया। आनेपर प्रतिभाने कहा—"शिबू, सुना है, मिसिर-बाबू काशी गये हैं?"

गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाते हुए शिबूने उत्तर दिया—"जी हां।"

प्रतिभा—"वे वहां रुपयोंका प्रबन्ध कर सकेंगे?"

प्रतिभाका अभिप्राय शिबूसे छिपा न रहा। उसने दबी ज़बानसे कहा—"मुझे तो आशा नहीं है।"

प्रतिभा—"तो, अब क्या करना होगा?"

शिबू—"मिसिरजीसे रुपयोंका प्रबन्ध न हो सकेगा, तो फिर आपके गहनोंपर आ बनेगी। इससे अगर आप उचित समझें, तो कुछ दिनके लिये पीहर चली चलें। फिर मामला खतम होनेपर चली आवें।"

प्रतिभाको बात जंच गयी; और रातके समय यात्रा निश्चित हो गयी। शिबू भी अपना निशाना चौकस पड़ते देख मन-ही-मन फूलकर कुप्पा हो गया।
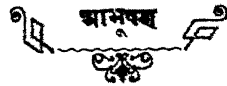
सन्ध्यासे ही प्रतिभा अपने एक-एक गहनेको धारण करने लगी। उसका सारा शरीर—नखसे शिखतक—गहनोंसे भर गया। उसकी सुन्दरताके साथ मिलकर गहनोंकी सुन्दरताने ग़ज़ब कर दिया। अपनी सुन्दरतापर वह आप ही मोहित हो गयी।

रात हुई। सब सामान तैयार था। गाड़ी द्वारपर आ लगी। प्रतिभा उसमें जा बैठी। शिवूने एक पत्र लिखकर हेडक्लर्कको दे दिया। उसमें उसने लिखा कि मालिकिनको उनके पीहर पहुंचाकर जल्द लौटूंगा।

प्रातःकाल क्लर्कने शिवूकी चिट्ठी मैनेजरको दी। मैनेजर राधाकृष्णने दुनिया देखी थी। मिसिरजीके पिताके समयसे ही वे इस कारख़ानेके मैनेजर थे। मरते समय मिसिरजीके पिता मिसिरजीको इन्हींके हाथों सौंप गये थे। मैनेजर-साहब भी मिसिरजीको पुत्रसे कम न समझते थे।

पत्र पढ़कर मैनेजर-साहबका माथा ठनका। उन्हें मालूम हो गया कि दालमें कुछ काला है। वे एक भावी सङ्कटकी आशङ्कासे अधीर हो उठे। उसी दिन मिसिरजीको एक पत्र लिखा। उसमें लिख दिया कि आपके जानेके दिन ही बहूजी बिना हमलोगोंसे कुछ कहे पीहर चली गयी हैं? पहुंचानेके लिये शिवचरण भी साथ ही गया है। आपको जल्दी आना चाहिये।

पत्र पढ़कर मिसिरजी क्रोधसे जल उठे। हायरी अविश्वासिनी! मुझपर इतना अविश्वास! मैंने आजतक तुझे कोई कड़ी बात न कही, सदा तेरी मनमानी करता रहा, तेरे लिये खून

बहानेको तैयार रहा, उसीका यह बदला ! स्त्री-जाति, तेरी माया धन्य है !

आगे मिसिरजी न सोच सके। कुछ देरके लिये वे मौन हो गये। सहसा पुनः बोल उठे—'नहीं, यह स्त्रीत्वका दोष नहीं है। इसका कारण है, पाश्चात्य शिक्षा। जिस शिक्षापर मैं मरता रहा, यह उसीका भीषण रूप है। तब तो इन शिक्षित स्त्रियोंसे वे अशिक्षित गंवार ही लाख दर्जे अच्छी हैं, जो तन-मन-धनसे पतिकी सेवामें रत रहती हैं। पतिके सुख-में-सुख और दुःख-में-दुःख मानती हैं। माना कि वे अंग्रेज़ी नहीं जानतीं, उन्हें तर्क-वितर्क करना नहीं आता, मर्दोंके हाथ-में-हाथ देकर घूमना नहीं आता, पर उनके हृदय तो है? उनकी तुलनामें ये हृदयहीन शिक्षिता स्त्रियां—जिनके हृदयमें पतिके सुख-दुखका ख़याल नहीं, जो पतिको केवल सुख-साधक यन्त्र समझती हैं—पासङ्ग नहीं जंच सकतीं।"

देरतक मिसिरजी योंही प्रलाप करते रहे। जब चित्त कुछ स्वस्थ हुआ, तो अपने लौटनेकी तैयारी की, और दूसरे दिन प्रातः-कालकी गाड़ीसे घरके लिये चल दिये।

५

मिसिरजी घर पहुंचे। भव्य भवन भूतोंका अड्डा मालूम पड़ता था। अन्दर जानेका साहस न होता था।

दिन-भर बैठकमें बितानेके बाद सन्ध्याके समय मिसिरजी नौकर-चाकरोंको बाहर छोड़ अकेले, जी कड़ाकर, मकानमें घुसे।

चारों ओर घूमनेके बाद कलेजा थामकर कमरेकी एक खिड़कीमें जा बैठे। सामने पुण्य-सलिला भागीरथी हर-हर शब्द करती हुई बह रही थीं। चन्द्रमाकी शीतल किरणें गङ्गाके जलसे अटखेलियां कर रही थीं। चारों ओर शान्तिका साम्राज्य था। शान्ति—विश्वमय शान्ति; जिधर देखिये, उधर शान्ति। चन्द्रमाकी किरणोंमें शान्ति, उदास दखिन हवामें शान्ति, गङ्गाके जलमें शान्ति, प्रकृतिमें शान्ति, शान्ति, सर्वत्र शान्ति थी। यदि कहीं अशान्ति थी, तो मिसिरजीके हृदयमें। ज्यों-ज्यों मिसिरजी शान्तिकी खोजमें अग्रसर होते थे, शान्ति त्यों-त्यों उनसे दूर हटती जाती थी। कमरेमें अंधेरा छा गया था। खिड़कियोंसे चन्द्रमाकी चांदनी घरमें छिटक पड़ी थी। मिसिरजी खिड़कीमें बैठे-बैठे सोच रहे थे—"सभी तो है, पर उसके बिना सब शून्य है। उसके हाथका एसेन्ससे भीगा हुआ रूमाल आज भी कमरेमें सुगन्ध फैला रहा है, उसके गुलदस्तेके सूखे हुए फूल अभीतक उसकी यादमें आँसू बहा रहे हैं, उसके हाथ मलनेके साबुन ज्यों-के-त्यों डिब्बोंमें बन्द हैं, उसकी बम्बइया साड़ी अरगनीपर टंगी हुई है, उसकी बड़े आदरकी किताबें पूर्ववत् अल्मारियोंमें बन्द हैं, उसके लगाये हुए पानके बीड़े उसक याद कर-करके सूख गये हैं। पर उसका पता नहीं। उसके बिना यह सब शून्य है, निस्सार है।"

मिसिरजी सोच-विचार कर पास ही पड़े हुए सोफ़े पर लेट गये। अर्द्ध निद्रितावस्थामें एक स्वप्न देखने लगे। इसी समय मिसिरजीने सुना, गङ्गाके नीरव जलके अन्दरसे झन्-झन्की

आवाज़ उठी। आवाज़ धीरे-धीरे बढ़ती गयी, और घाटपर आ पहुंची। घाटसे आवाज़ आगे बढ़ी। झन्-झन् शब्द करती हुई वह मिसिरजीके दरवाज़ेपर आ पहुंची। दरवाज़ा बन्द था। फलतः वह आवाज़ पुनः धीरे-धीरे गङ्गाकी ओर बढ़ी, और जाकर गङ्गा-गर्भमें विलीन हो गयी। मिसिरजी चौंक उठे। उनकी निन्द्रा भङ्ग हो गयी थी, वे जाग पड़े।

६

इस घटनाका मिसिरजीपर गहरा प्रभाव पड़ा। रातभर वे सोफ़ेपर करवटें बदलते रहे। नींद उनके पास फटकी भी नहीं। कोठरीकी सभी चीज़ें मिसिरजीको देख विद्रूपकी हँसी हँस रही थीं।

किसी भांति प्रातःकाल हुआ। प्रभातकी सूर्य-रश्मियोंने मिसिरजीके हृदयमें नवजीवनका सञ्चार किया। उनके दिलमें कुछ भरोसा हुआ। सारा डर-भय जाता रहा।

मिसिरजीने एक आदमी प्रतिभाके पीहर भेजा। उसे कड़ी ताक़ीद कर दी, जिसमें वह आज ही किसी भांति लौट आवे।

आदमी भेजकर, कुछ समयके लिये, मिसिरजीको किञ्चित शान्ति मिली; पर दोपहरको उस आदमीने लौटकर जो कुछ बयान किया, उससे उनकी पहलेसे भी बदतर हालत हो गयी। रही-सही आशा भी जाती रही। उसने कहा—

"प्रतिभा और शिवू दोनों-में-से कोई वहां नहीं पहुंचा।"

यह मिसिरजीपर नयी विपत्ति आ पड़ी। अभीतक वे प्रति-

भाको घरसे ही गया समझते थे, अब उन्हें उसे संसारसे ही गत समझना पड़ा। इस विपत्तिको वे सहन न कर सके। क्षण-भरके लिये मूर्च्छित हो गये।

होश आनेपर मिसिरजीने थानेमें इसकी रिपोर्ट करवा दी। स्थानीय सभी दैनिक पत्रोंमें विज्ञापन छपवा दिया। चारों ओर मिसिरजीके आदमी प्रतिभाको ढूंढ़नेके लिये छूटे।

७

रात्रिके समय मिसिरजी पुनः प्रतिभाकी कोठरीमें गये। खिड़कीपर बैठकर वे कलकी घटनाका तत्वान्वेषण करने लगे। आगे आज उन्होंने दरवाज़ा खुलवा दिया है। घरमें कोई नौकर-चाकर भी नहीं है। सभी आज इस घरसे हटा दिये गये हैं।

मिसिरजी झूठमूठ ही आंखें मूंदे हुए खिड़कीमें बैठ गये। उत्सुकताकी उत्तेजना एक क्षणका विलम्ब भी सहनेको तैयार न थी। वे बड़ी घबड़ाहटके साथ उस आवाज़की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी प्रतीक्षामें उनकी आंख लग गयी। कलकी भांति फिर स्वप्न देखने लगे। जान पड़ा मानों पुनः झन्-झन्की आवाज़ गङ्गासे निर्गत हुई। आवाज़ मिसिरजीके घरकी ओर बढ़ती हुई मालूम हुई, धीरे-धीरे मृदु पदक्षेप करता हुआ, गङ्गाके थपेड़ों-के तालपर नाचता हुआ वह शब्द मिसिरजीके घरकी ओर अग्रसर हुआ। दरवाज़ेपर आकार आवाज़ रुक गयी।

उसके बाद आवाज़ने घरके अन्दर पदार्पण किया। धीरे-धीरे वह बराण्डेमें आयी। बराण्डेमें आकर प्रत्येक कमरेकी कुण्डी

खोल-खोलकर उसमें प्रवेश करने लगी। नीचेके सब कमरोंमें घूम-फिरकर आवाज़ सीढ़ियां चढ़ने लगी। झन्-झन् शब्द करते हुए उसने सभी सीढ़ियां पार कर लीं। मिसिरजीके घरके सामने जाकर खड़ी हो गयी। मिसिरजीने देखा, प्रतिभा सामने खड़ी है। नखसे शिखतक उसका गहनोंसे लदा हुआ है। वह बढ़िया बम्बइया साड़ी पहने हुए है। पर उसके शरीरमें मांसका नामनिशान नहीं। वह केवल ठठरी—कङ्काल-मात्र है।

वह देरतकदरवाज़ेपर खड़ी रही। अन्तमें उसके होंठ धीरे-धीरे हिले। उसने कहना प्रारंभ किया—"प्रियतम, मैं तुमको आजतक न पहचान सकी। बिना जाने तुमपर अविश्वास किया,और उसी-का आज यह फल पा रही हूं। पर प्राणनाथ, यह दण्ड बड़ा कठिन है। इसको मैं अकेले कैसे सह सकूंगी? तुम दयालु हो, मेरी यह यम-यातना देख मुझपर दया करो। मेरे अपराधोंको क्षमा करो। मुझे इस असहनीय दुःखसे उबारनेका कोई यत्न करो।"

मिसिरजीकी आंख खुली। देखा, न वहां प्रतिभा है, और न कोई। घबड़ा गये। चिल्ला उठे। उनकी चिल्लाहट सुनकर नौकर-चाकर दौड़ पड़े। देखा, मिसिरजीकी दशा अत्यन्त चिन्ता-जनक है।

इस घटनासे मिसिरजीकी अजीब हालत हो गयी। कभी वे आप-ही-आप खिलखिला उठते, और बालकोंकी भांति फूट-फूट-कर रो पड़ते थे। कभी गाने लगते, और कभी नौकरोंपर बिगड़-कर उन्हें गाली देने लगते थे। इसी अवस्थामें इस भ्रममें कि कहीं

सचमुच प्रतिभा न आयी हो, और आकर कहीं छिप रही हो, उन्होंने सारा घर साफ़ करवाया।

मिसिरजीके लिये आजका दिन द्रौपदीके चीरसे भी लम्बा हो गया था। किसी भांति बीतता ही न था। आज सूर्य-देवके रथके पहियेका धुरा टूट गया था, घड़ीके पेण्डूलममें मोर्चा लग गया था। नहीं तो कभीका दिन बीत गया होता। धीरे-धीरे मिसिरजी-की उतावलीको कम करती हुई सन्ध्या आ ही उपस्थित हुई।

८

मिसिरजीने फिर उसी खिड़कीपर आसन जमाया। नींद ही नहीं पड़ती थी। बार-बार करवटें बदलते थे। आखिर विचारों-की उधेड़-बुनमें क़रीब १२ बजे आंख लगी। पर स्वप्नमें आज फिर पूर्व-ही-की भांति गङ्गा-गर्भसे ठठरीका आविर्भाव हुआ। झन्-झन्का शब्द करते हुए वह मिसिरजीके गृहाभिमुख प्रस्थित हुई।

आज वह कहीं रुकी नहीं। हरएक कमरेमें उसने चक्कर भी न लगाया। वह सीढ़ियां तय करके सीधी ऊपर जा पहुंची। मिसिरजीके कमरेके सामने भी आज वह न खड़ी हुई। उसने सीधे अपने कमरेमें प्रवेश किया। इस समय मिसिरजीने बहुत चाहा कि उठकर उसे रोक लें। उसकी यह दशा कैसे हुई, यह पूछें। पर उनके शरीरकी शक्ति ही न जाने कहां चली गयी। वे उठ न सके। वाक्शक्तिने भी उसी समय जवाब दे दिया। जीवित होकर भी वे मुर्देकी भांति पड़े रहे।

प्रतिभा कमरेमें घुसी। वहां उसने अपनी प्रत्येक चीज़को

उठाकर उसे बार-बार चूमा, प्यार किया। फिर वह अपने गहनोंके सन्दूक़के पास गयी। सन्दूक़ खुला पड़ा था। उसके सब ख़ाने ख़ाली थे। वहां जाकर उसने अपने शरीरसे एक-एक करके सभी गहनोंको उतारना प्रारम्भ किया। सब गहने खोलकर उसने बड़े यत्नसे सन्दूक़में रख दिये, और उसमें ताला लगा दिया, और दरवाज़ेकी ओर बढ़ी। धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे उतरती हुई प्रतिभा नीचे आयी। घरसे बाहर निकलकर उसने बड़ी श्रद्धासे हाथ जोड़कर एक बार घरको प्रणाम किया, और गङ्गाकी ओर चल पड़ी।

मिसिरजी अभीतक तो लेटे-लेटे ही स्वप्न देखते रहे; पर अब स्वप्नके झोंकेमें उठे, और गङ्गाकी सीध बांध ली। उन्हें मालूम पड़ता था, मानों आगे-आगे प्राणवल्लभा प्रतिभा भी जा रही है। गङ्गाके किनारे पहुंचते ही मालूम पड़ा, मानों प्रतिभा गङ्गामें कूद पड़ी। फिर मिसिरजी अपनेको न संभाल सके और 'झम'से गङ्गामें कूद पड़े।

× × × ×

इस घटनाके दस दिन बाद मिसिरजीका नौकर शिबू एक गहनोंकी गठरी-समेत कलकत्तेमें पकड़ा गया, और अपने बयानमें उसने क़बूल किया कि मैंने गहनोंके लोभमें पड़कर प्रतिभाको मारकर गङ्गामें डाल दिया। इसपर शिबूको फांसीका दण्ड मिला।

पापकी पराजय

"सन्ध्या हो गयी। कितनी देर उनकी कोई राह देखे" कहती हुई फूलमती चारपाईपर लेट गयी।

दुपहरी ढल चुकी है। भोजन बनाकर बैठे-बैठे बड़ा विलम्ब हो गया। अतएव मदनके न आनेपर फूलमती आलस्यके मारे चारपाईपर लेट रही। थोड़ी देरमें उसे नींद आ गयी।

मदनने घरमें आकर देखा, फूलमती चारपाईपर सो रही है। चारपाईके पास आकर उन्होंने फूलमतीके मुख-मण्डलकी सौन्दर्य-प्रभाका क्षण-भर संदर्शन किया, और वक्षस्थलपर रक्खे हुए उसके हाथको अपनी ओर खींचकर उसके जगानेकी चेष्टा की। अचानक जागकर फूलमतीने स्वामीको अपनी चारपाईके पास खड़ा देखा। घबड़ाकर उठ बैठी, और कहने लगी—

"आज दिन-का-दिन बीत गया। कहां चले गये थे?"

मदन—"तो क्या इसीलिये तुम्हें नींद आ गयी थी कि रात आ गयी?"

फूलमती—"रात आ ही गयी। अब दिन ही कितना रह गया है? न जाने कब दुपहरी हुई थी। राह देखते-देखते थक गयी, तो तनिक लुढ़क रही। फिर मुझे कब नींद आयी और कब तुम आये, मैंने यह कुछ नहीं जाना।"

मदनने मुस्कुराकर कहा—"तुम्हें तो अपनी नींदकी पड़ी थी। मेरा आना-जाना कैसे मालूम होता ?"

"दिन-भर बिताकर जब आते-आते आये, तो ये बातें करने लगे। क्या अभी भूख नहीं लगी ?"

मदनने कुछ उत्तर नहीं दिया। फूलमती रसोई-घरमें गयी, और मदनके लिये भोजन परोसने लगी। थाल सम्मुख आते ही मदनने फूलमतीसे पूछा—

"तुम क्या भोजन कर चुकी हो ?"

फूलमती—"मैं अभी भोजन कैसे कर लेती ? तुम खा लो, फिर मैं भी खाऊंगी।"

मदन—"तो फिर तुम भी खाओ। देर करनेकी क्या आवश्यकता ?"

फूलमती—"तुम खा लो, फिर मैं भी खा लूंगी।"

मदन—"और अभी क्यों नहीं खाती ?"

फूलमतीने एक बार मदनके मुख-मण्डलकी ओर देखा, और कुछ उत्तर न देकर अपना मस्तक नीचे कर लिया। मदनने फिर कहा—

"मेरे आगे खानेमें कुछ सङ्कोच है क्या ? नहीं तो, बोलो, क्या बात है ?"

स्वामीके मुखसे प्यार और प्रेम-भरी बातें सुनकर फूलमतीका हृदय हर्षोल्लाससे गद्गद हो उठा। स्वामीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई बोली—

"मैं भी खा लूंगी, पहले तुम खा लो!"

मदन फिर कुछ न बोले। अपने स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे फूलमतीकी यौवनकालीन मुख-प्रभा और शारीरिक छटा निहारने लगे। उनकी दृष्टि और भावना फूलमती के प्रति अपनी निर्बलता और अवमानना प्रकट कर रही थी।

फूलमती स्वामीके स्नेहकी अधिक अवहेलना न कर सकी। उसने दूसरे पात्रमें भोजन परोसकर अपने सम्मुख रक्खा, और कहा—"बस और कुछ?"

मदनने मुस्कुराते हुए कहा—"क्यों, मेरी बातोंसे तुम्हें कुछ कष्ट हुआ?"

फूलमतीने मदनके मुखकी ओर अतृप्त नेत्रोंसे निरखकर लज्जासे अपना सिर झुका लिया, और कृत्रिम झुंझलाहट दिखाकर कहा—"अच्छा, अब भी खाओगे, या ऐसे ही बातें करते रहोगे?"

मदनने विनम्र स्वरमें कहा—"वही तो मैं पूछ रहा हूं। मेरी बातोंसे क्या तुम्हें कुछ कष्ट होता है?"

मदनके इस स्नेहाकर्षणसे मन-ही-मन फूलमती फूल गयी; किन्तु तुरन्त ही आनन्दोल्लासको छिपाकर बोली—

"कष्ट! कष्ट नहीं, तुमको भूख लगी होगी। देखो न, सारा दिन हो गया, कुछ खाया नहीं।"

मदनने भोजन करना प्रारम्भ किया। फूलमतीने खाते हुए कहा—

"आज कहां चले गये थे ? दिन-भर बीत गया।"

मदन बोले—"रामप्रतापके यहां ज़रा चला गया था। वहीं इतनी देर हो गयी।"

विवाह हो जानेके पश्चात् मदन रामनगरमें अपने भाई बिहारीलालसे पृथक् निवास करते हैं। बिहारीलाल मदनके बड़े भाई हैं। विवाहके पीछे दोनों भाइयोंमें परस्पर झगड़ा प्रारम्भ हुआ, और किसी प्रकार सुलझाये न सुलझा, अन्तमें मदनको अपने बड़े भाईसे पृथक् हो जाना पड़ा। मदनके पिता अपने बड़े पुत्र बिहारीलालको अच्छी सम्पत्ति छोड़कर मरे थे। किन्तु मदनको उसमेंसे कुछ भी न मिला।

२

रामनगर एक विस्तृत ग्राम है। छोटे-मोटे कई ज़मींदारोंमें ठाकुर रामप्रतापका गांवमें अधिक मान है। यों तो कितने ही क्षत्रिय-ब्राह्मण गांवके काम-काजमें भाग लेते हैं, किन्तु जिसमें रामप्रताप खड़े हो जाते हैं, उसके विपरीत खड़े होनेका फिर कोई साहस नहीं करता।

मदनके घरसे बिहारीलालका घर कुछ ही दूरीपर है। प्रातः-कालके पांच बजे होंगे। अकस्मात् बिहारीलालके घरसे उनकी स्त्रीके रोनेका चीत्कार सुनायी पड़ा। बात-की-बातमें वहां कितने ही स्त्री-पुरुष एकत्रित हो गये। देखा, बिहारीलाल अपनी चारपाईपर कटे पड़े हैं।

बिहारीलालका यह दुस्संवाद सारे गांवमें बात-का-बातमें फैल गया। चौकीदारने पुलिसमें रिपोर्ट की। लगभग आठ बजे तीन-चार कान्स्टेबुलोंके साथ थानेदार आ गये। आकर पहले घटनास्थलका निरीक्षण किया, फिर गांवके कुछ व्यक्तियोंके इज़हार लिये; और सन्ध्याके चार बजेके क़रीब मदनका चालान करके पुलिस चली गयी। एक ओर बिहारीलालका यह दुस्संवाद, और दूसरी ओर मदनके बन्दी होनेका समाचार, दोनों एक साथ गांवमें फैले। कहीं बिहारीलालके प्राणघातकी चर्चा, और कहीं मदनके बन्दी होनेकी आलोचना की जाने लगी।

मदनके बन्दी होनेके समाचारसे फूलमतीके सिरपर वज्रपात-सा हुआ। रोने-चिल्लानेके अतिरिक्त उसे कुछ सूझता न था। बैठकर भविष्यके लिये अपने कर्त्तव्यका निर्णय करती, और फिर घबराकर आंसू बहाने लगती। उसके पास ऐसा और कोई नहीं जो उसे इस कुसमयमें सान्त्वना दे।

उसे बिना कुछ खाये-पीये दो दिन बीत गये। पड़ोसकी कई स्त्रियां उसके घर आयीं, और दो-दो चार-चार बातें करके लौट गयीं, किन्तु किसीने मदनके मुक्त होनेकी कोई बात न कही। फूलमती बैठकर सोचने लगी—"अब मैं क्या करूंगी? किससे अपनी विपत्तिकी बात कहूंगी? कौन मेरी सहायता करेगा? मैं बड़ी अभागिनी हूं। आज मेरे ऐसा कोई नहीं जो ऐसे सङ्कटमें सहायक बने? गांव-बस्तीके लोगोंसे मैं बोलती नहीं,

उनके सामने निकलती नहीं, फिर कैसे जिन्दगी कटेगी, कुछ समझमें नहीं आता।"

कई दिन हो गये। एक दिन मलिनवदना फूलमती अपने घरमें अकेली बैठी हुई थी, उसी समय एक बुढ़ियाने आकर घरमें प्रवेश किया, और फूलमतीके पास जाकर बैठ गयी। क्षण-भर ठहरकर बुढ़ियाने कहा—"आज कई दिन हो गये। मदनकी कुछ खबर नहीं मिली। यह भी पता न लगा कि मदन क्यों बन्दी किये गये।"

फूलमती—"गांवके सब लोगोंने दरोगा-साहबसे कहा है कि उनको छोड़कर जेठजीका किसीसे बैर नहीं था। इसीपर पुलिसने चालान कर दिया।"

बुढ़िया—"तुम्हारे मायकेमें कोई नहीं है जो आकर कुछ इन्तजाम करे? दौड़-धूप करनेसे मदन छूट सकते हैं।"

फूलमतीने आंखोंमें आंसू भरकर कहा—"मेरे न भाई है, न बाप। किसकी आस करूं? कौन इस अनाथके लिये दौड़-धूप करेगा?"

बुढ़ियाने कुछ सोच-समझकर कहा—"तो फिर बैठे-बैठे क्या होगा? अपने जानमें मदनके छुटकारेके लिये कुछ उठा न रखना चाहिये।"

फूलमती—"मैं क्या कर सकती हूं? किसके पास जाकर सहायता मांग सकती हूं? कौन मेरी सुनेगा?"

बुढ़िया—"मुझे और तो कोई देख नहीं पड़ता। हां, ठाकुर

रामपरतापके पास जानेसे चाहे कुछ काम निकल जाय। वे बड़े दयालु हैं। तुम उनके पास जाओ, और अपनी बिपत्तिमें सहायता मांगो।"

फूलमती—"मैं उनके सामने कभी बोली नहीं। कभी उनके सामने निकली भी नहीं। कैसे कुछ कहूंगी?"

बुढ़िया—"तुम्हारा अब सङ्कोच करके निस्तार नहीं हो सकता। तुम्हारे आज कोई दूसरा सहारेको होता, तो और बात थी। बिपत्तिमें इन बातोंका ध्यान नहीं किया जाता। रामपरतापको मैं जानती हूं, वे जरूर तुम्हारी मदद करेंगे।"

फूलमती—"मेरी बिनतीपर क्या वे यहीं आनेकी दया न करगे?"

बुढ़िया—"हां, यह भी ठीक है। हो सकेगा तो मैं उन्हें यहीं ले आऊंगी।"

यह कहकर बुढ़िया चली गयी, और फूलमती पुनः विचार-सागरमें डूबने-उतराने लगी।

* * * *

कुछ देरके बाद अचानक बुढ़ियाके साथ रामप्रतापने घरमें प्रवेश किया। रामप्रतापको देखकर फूलमतीको अपनी विपत्तिकी सुध आ गयी। वह रामप्रतापके पैरोंपर गिरकर फूट-फूटकर रो उठी। बुढ़ियाने उसे उठाकर शान्त किया। रामप्रताप बैठ गये, और बूढ़ी रामदुलारीकी ओर सङ्केत करके फूलमतीसे कहने लगे—

"रामदुलारीसे मैंने तुम्हारे दुःखकी बातें सुनी हैं। तुम अब क्या चाहती हो?"

फूलमती—"मैं अब अनाथ हूं। मेरे अब दूसरा कोई नहीं है जो उनके छुटकारेके लिये दौड़-धूप करे। मैंने आपकी बड़ी तारीफ़ सुनी है। मुझे भरोसा है, आप इस सङ्कटमें मेरी सहायता करेंगे।"

फूलमतीसे प्रशंसाकी बातें सुनकर रामप्रतापको अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने उसे सिरसे पैरतक एक बार देखा, और कहा—"मैं तुम्हारी भरसक सहायता करूंगा। तुम विश्वास रक्खो। कल प्रातःकाल उठकर मैं थाने जाऊंगा, और दारोग़ा-साहबसे मिलकर मदनके छुटकारेके लिये चेष्टा करूंगा।"

यह कहकर रामप्रताप उठकर चले गये। रामदुलारी भी उनके पीछे-पीछे चली गयी।

३

फूलमतीकी साहाय्य-याचनाको रामप्रतापने अपना परम सौभाग्य समझा। प्रत्येक दिन एक-दो बार जाकर वे फूलमतीको मदनके छूट जानेकी आशा दिलाने लगे। फूलमती भी रामप्रतापका आश्रय पाकर सन्तोष करने लगी। एक-एक करके कितने ही दिन बीत गये। एक दिन अपने कमरेमें बैठे हुए रामप्रताप सोचने लगे—"फूलमतीने मुझसे ही सहाय्य-प्रार्थना क्यों की है? क्या गांवमें कोई दूसरा व्यक्ति न था? उसका अभिप्राय तो यही न हो सकता है कि वह मुझे चाहती है? फूलमती एक

सुन्दरी नवयौवना स्त्री है। उस-जैसी सुन्दर मूर्तिके लिये क्या कभी मदनका घर उपयुक्त हो सकता है? कहां उसका यौवन-सौन्दर्य्य और कहां उस टूटे-फूटे घरकी मनहूस दीवारें। वह इन सब बातोंका अनुभव करती है, तभी तो उसने मेरा आश्रय चाहा है।"

* * * *

सन्ध्याके अभी चार नहीं बजे होंगे। फूलमतीके घरपर एक चारपाईपर रामप्रताप बैठे हुए हैं। थोड़ी ही दूरपर फूलमती बैठी हुई कुछ सोच रही है। रामप्रतापने कई बार उसे आपाद-मस्तक देखकर कहा—

"मदनके छुटकारेके लिये बड़े प्रयत्न, परिश्रम और रुपये-पैसेकी आवश्यकता है। यह सब मैं करता रहूंगा। तुमको अब किसी बातकी चिन्ता न करनी चाहिये।"

फूलमतीने कृतज्ञतापूर्वक कहा—"मैं आपकी इस दयाके लिये आपका अहसान मानती हूं। उनके छूटनेपर मैं आपका सब रुपया चुका दूंगी।"

रामप्रताप—"रुपये-पैसेकी तुम कुछ चिन्ता न करो। यथा-शक्ति मैं मदनको छुड़ानेकी चेष्टा करूंगा। मदनको मैंने कभी दूसरा नहीं समझा। तुम प्रसन्नतापूर्वक रहो, अच्छी तरह खाओ-पीओ। जिस बातका तुम्हें कष्ट हो, मुझसे कहो।"

फूलमती—"यह आपकी दया है, किन्तु जबतक उनकी नहीं होती, मुझे सुख कहां?"

फूलमतीकी बात सुनकर रामप्रतापके हृदयपर अचानक आघात-सा हुआ। वे समझते थे, फूलमती अपने जीवन-निर्वाहके लिये उनसे प्रार्थना करेगी, किन्तु उसकी स्वाभिमानपूर्ण पति-भक्तिसे उनके दिलको जो धक्का लगा, उससे अवसन्न होकर उन्होंने फूलमतीको ध्यानपूर्वक देखकर कहा—

"छूटनेके लिये तो मैं चेष्टा कर ही रहा हूं, पर गांवभर कहता है कि बिहारीलालसे मदनकी बहुत दिनसे शत्रुता रही है। अपने पास कोई ऐसी सफाई भी नहीं है, जिसका भरोसा किया जा सके।"

रामप्रतापकी यह बात सुनकर फूलमती कांप उठी। अब-तकका भरोसा बात-की-बातमें मिट्टीमें मिल गया। अपने अञ्चलसे आंखोंके आंसू पोंछकर उसने कहा—

"जहांतक हो सके, आप कोशिस करें। फिर जो कुछ मेरे भाग्यमें बदा है, होगा।"

रामप्रताप वहांसे उठकर चले आये, और अपने कमरेमें बैठकर सोचने लगे—"मैं रात-दिन दौड़ूं, सख्त धूप सहूं, किस लिये? मुझे क्या पड़ी है? उसका यह स्वाभिमान! उसकी यह पति-भक्ति! देखता हूं, कौन मदनको छुड़ा लेता है? इतने बड़े अभियोगसे मुक्त हो जाना खेल नहीं है।"

रामप्रताप नित्य फूलमतीके घर एक-दो बार आया-जाया करते थे। पर आज तीसरा दिन है, वे उसके घर नहीं आये। अबतक फूलमतीको मदनके छूटनेका पूरा भरोसा

था, किन्तु आज जो कोई फूलमतीसे मिलता, यही कहता कि मदनके छूटनेकी कोई आशा नहीं। पुलिसने अबतक जो प्रमाण एकत्रित किये हैं, उनसे मदनका बचना असम्भव है। यह सब सुन-सुनकर फूलमतीका हृदय फटने लगा।

४

फूलमतीका संदेशा पाकर रामप्रताप उसके घर आये, और कहने लगे—"क्यों, क्या बात है?"

फूलमती—"गांवमें जो चर्चा फैल रही है, क्या आपने भी उसे सुना है?"

रामप्रताप—"न, मैंने तो नहीं सुना।"

फूलमती—सब लोग कहते हैं कि पुलिसने जो सबूत इकट्ठे किये हैं, उनसे छूटनेकी कुछ उम्मेद नहीं है।"

रामप्रताप—"यह बात तो नहीं है, पर हां, अभियोगकी अवस्था कुछ कठिन अवश्य दिखाई देती है।"

फूलमती—"आपने तो उस दिन कहा था कि कोसिस करनेसे वे छूट सकते हैं?"

रामप्रताप—"हां, पहले तो अभियोगकी अवस्था ऐसी भयानक नहीं थी जैसी अब हो गयी है, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि तुमने चाहा होता, तो मदन कभीके छूट गये होते।"

फूलमतीने चौंककर कहा—"आपकी इस बातका क्या मतलब है? मुझे दया करके समझा दीजिये। अबतक मुझे इस

बातका ज्ञान नहीं कि मैं इसमें क्या कर सकती हूं। मेरे ऊपर दया करो? मैं अज्ञान अबला हूं।"

रामप्रतापने मुस्कुराकर—"तुम! तुम अज्ञान नहीं हो, अपनी स्वार्थ-रक्षामें प्रवीण हो।"

फूलमती—"मैं अबतक कुछ नहीं समझ सकी। मुझे समझा दीजिये कि मुझमें क्या स्वार्थ है, क्या चतुराई है।"

रामप्रताप—"मैं तुम्हारे लिये रात-दिन दौड़ूं-धूपूं, रुपया-पैसा पानीकी तरह बहाऊं, इससे तुम्हारा तो काम बनेगा, किन्तु मुझे क्या मिलेगा?"

फूलमती—"इससे आपकी मान-मर्जादा बढ़ेगी। परमात्मा आपको और भी सुखी करेगा।"

रामप्रताप—"सब कहनेकी बातें हैं।"

फूलमतीने रामप्रतापके मुखकी ओर देखा। उनके उस नेत्र-द्वयके प्रकाशमें, जो उनके शरीरपर पड़ रहा था, अलक्षित मदान्ध भाव दिखाई पड़ा। फूलमतीका हृदय सहम उठा। उसने कातर स्वरमें कहा—"और मैं आपकी कौन सेवा कर सकती हूं?"

रामप्रताप—"मैं तुम्हारे लिये जान देता फिरूं और तुम अपने आपको मुझसे इतना दूर रक्खो! यदि तुमने मुझे अपना समझा होता, तो क्या आज तुम्हारी यही दशा होती?"

रामप्रतापकी बातें सुनकर फूलमतीका मुख क्रोधसे लाल हो गया, और उसने ख़ामोशी अख़्तियार की। उसका यह रुख़ देख रामप्रताप भी तुरन्त ही चले गये।

५

फूलमती अपने भाग्यपर आंसू बहा रही थी कि अचानक रामदुलारीने आकर कहा, "यह क्या हो रहा है ?"

फूलमती—"कुछ नहीं, बैठी हूं।"

रामदुलारी—"मदन-भैयाका कुछ हाल मिला ?"

फूलमतीने दीर्घश्वास लेकर कहा—"जो राम करगे, होगा।"

रामदुलारी—"क्यों, क्या बात है ? ठाकुर-साहब क्या कहते हैं ?"

फूलमती—"मैं उनसे अब कुछ नहीं चाहती। तुमने मुझे धोखा दिया।" कहकर फूलमती फिर रोने लग गयी।

रामदुलारी सहानुभूति-सूचक शब्दोंमें अपना जाल फेंकने लगी। बोली—"बहू, यह संसार है। यहां इन बातोंका विचार नहीं किया जाता। तुमको चाहिये कि जिस तरह हो सके, मदन-भैयाके छुटकारेका उपाय करो।"

रामदुलारीके यह शब्द फूलमतीको वाणके समान लगे। वह विस्मित नेत्रोंसे उसकी ओर देखती हुई बोली—"मुझे ऐसी किसीकी सहायता नहीं चाहिये। वे छूटें या न छूटें।"

रामदुलारी—"बहू, तुम मेरी बातोंपर नाराज न होना। जितना रामपरतापने मदन-भैयाके छुटकारेके लिये किया उतना कौन कर सकता है ? आज तुम ऐसी बातें करती हो, गांवके लोगोंको ठाकुर-साहबका डर न होता, तो तुम्हारा यहां अकेले एक दिन भी रहना कठिन हो जाता।"

फूलमती—"ये सब बातें चाहे ठीक हों, जिनके लिये मैं ठाकुर-साहबका अहसान मानती हूं; पर मैं .... ।"

रामदुलारीने बात काटकर कहा—"पर-वर कुछ नहीं, यह सब तुम्हारा लड़कपन है ।"

रामदुलारी थोड़ी देरतक इसी प्रकारकी बातें करती रही। पर फूलमतीपर इन बातोंका कुछ भी प्रभाव न पड़ा ।

६

रामदुलारीके जानेपर फूलमती अभियोगकी समस्या और मदनके छूटनेके सम्बन्धमें सोचने लगी—"समयको देखकर क्या बुढ़ियाकी सलाह मान लूं ? तब तो चाहे वे छूट जायं ?..."

किन्तु बात-की-बातमें उसे अपने ऊपर ग्लानि उत्पन्न हुई। वह मन-ही-मन अपनेको धिक्कारने लगी, और दृढ़ निश्चय किया कि मैं अपने प्राण दे दूंगी, किन्तु किसीको अपने पासतक नहीं आने दूंगी। न छूटना बदा होगा, न छूटेंगे। परमात्माका नाम लेकर मैं अपने धर्मकी रक्षा करूंगी।

मदनके न छूटने और अपने दुर्दिनोंका विचार करके अञ्चलसे मुख छिपाकर फूलमती रो उठी। खेद और अनुशोचनमें पड़े-पड़े उसकी झपकी लग गयी। इसी बीचमें रामप्रताप भी आ पहुंचे। फूलमती सो रही है, यह देखकर वे दबे पांव उसके निकट जाकर उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभापर अपना प्राण देने लगे।

"अहा! सौन्दर्यकी कैसी छटा है? पति-वियोग-सन्तापसे यद्यपि मुख-सरोज कुम्हला गया है, तथापि उसमें मुझ-जैसे

व्यक्तियोंको निर्जीव बनानेके लिये पर्याप्त क्षमता है। साड़ीसे आधा बन्द और आधा खुला हुआ दक्षिण उरोज ग़ज़ब ढा रहा है। केसरी-सदृश पतली कमर, सुराहीदार ग्रीवा, अधिक क्या, इसके एक-एक अङ्गपर अपना सर्वस्व निछावर करनेमें कौन हतभाग्य आगा-पीछा करेगा? साड़ी सौन्दर्यको कसती है; पर सौन्दर्य साड़ीसे फूटकर बाहर छलक पड़ता है।"

यह सब सोच-सोचकर कामातिरेकसे रामप्रतापका कलेजा मुंह होकर बाहर निकला पड़ता था।

इस प्रकार कुछ देर निर्निमेष नेत्रोंसे उसे देखकर अपनी काम-पिपासाको बुझानेके लिये ज्योंही रामप्रतापने फूलमतीके शरीरका स्पर्श किया, त्योंही वह एकाएक घबराकर उठ बैठी, और रामप्रतापको बलात्कार करनेकी अभिलाषामें देखकर दूर हट-कर बोली—"पापी! तेरा इतना साहस!......अब समझी तेरी उन सब बातोंका मतलब! दूर हट यहांसे! नीच! पापी!"

फूलमतीकी बातोंकी ओर ध्यान न देकर दुरात्मा रामप्रताप उसकी ओर झपटा। यह देखकर वह घबरा उठी, और ज़ोरसे चीत्कार करके पीछे हट गयी। किन्तु अचानक खम्भेमें सिर टकरा जानेके कारण मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। उसका चीत्कार सुनकर कहीं कोई आ न जाय, इस डरसे पापी रामप्रताप भी घरसे चलता बना।

\+ \+ \+

तिमिराछन्न गम्भीर निशामें फूलमतीने देखा, नर-पिशाच

रामप्रताप अपने कठोर हाथोंसे उसकी बाहु पकड़कर अपनी ओर खींच रहा है। उसने बहुत कुछ खींच-तान की, किन्तु किसी प्रकार अपनेको छुटा न सकी। रोषावेशमें फूलमतीने अनेक प्रकारके अपशब्द कहे, पर उसपर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ते देख असमर्थ और निरुपाय होकर रामप्रतापके पैरोंपर गिर पड़ी, और रोकर कहने लगी—

"मैं अनाथ अबला हूं। मेरा सर्वनाश न करो। मेरा उपकार करनेके लिये तुमने मुझे धीरज बंधाया था। आज अपने उपकारकी हत्या न करो। मैं असहाय हूं। मेरी धर्म-हत्यासे तुम्हारा सर्वनाश होगा।"

फूलमतीने देखा, मेरी इस विनय और धर्म-याचनाका कुछ फल न हुआ। पतित रामप्रतापके बलात्कारसे मेरा सर्वनाश होनेमें अब विलम्ब नहीं है। उसने आर्त्तभावसे रामप्रतापके मुख-की ओर देखा—तिमिराछन्न नीरव अर्द्धनिशा—दुष्ट पापात्माका दुर्दमनीय बलात्कार। हाय! धर्मनाश!!

ज़ोरसे उसने अपना सिर हिलाया, चारपाईमें सिरके टकरा जानेसे उसकी नींद टूट गयी। उसने देखा, सायङ्कालका उसका जलाया हुआ दीपक जल रहा है, और उसके सिरहाने बैठे हुए मदन दो आदमियोंसे बातें कर रहे हैं!